सत्यधर्म ग्रन्थमाला—१म पुष्प

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

भुक्तिमुक्तिदायिनी एवं सर्वोदयकारिणी

सन्ध्या

देवर्षिपितृतर्पणसहिता

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वंमम देव देव ॥

भास्वतीश्वरशक्तिः सा सन्ध्येत्यभिहिता बुधैः

(भरद्वाजस्मृतिः)

मनसुखराय मोर

५, क्लाइव रो, कलकत्ता-१

सम्वत् २०२२ द्वितीय संस्करण १०००० सन् १९६५

पुत्र का कर्तव्य

पुत्र के लिये माता पिता की सेवा से बड़ा धर्म और तप कोई नहीं है उनके सन्तुष्ट होने से सब देवगण सन्तुष्ट हो जाते हैं। माता सर्वतीर्थमयी है पिता सर्वदेवमय है उनकी सब यत्न से पूजा करे। माता पिता को अभिवादन कर उनको प्रदक्षिणा करनेवाला व्यक्ति सम्पूर्ण भू मण्डल की परिक्रमा का फल पा लेता है। उनका वन्दन करनेवाला व्यक्ति धन्य है उनका अपमान करनेवाला पुरुष कल्प तक नरक में जाता है। माता पिता की सेवा किसी भी रूप में न छोड़े माता पिता की सेवा किये बिना भले ही कितने ही तीर्थों का सेवन करनेवाला पुत्र हो उसे तीर्थ यात्रा का फल नहीं मिलता। पद्मपुराण सृ० ५२।६-१६

सत्य सत्यं सुखं शिवम्

सत्यात्मक के विना कोई भी जीवन सफल नहीं है जो मनुष्य जीवन सत्यात्मक नहीं वह केवल सांस का खाला है। सुखी जीवन सत्यात्मक बने तभी है। वह किसमें है ? षट्कर्मों को विधिवत् समय पर किया जाय। षट्कर्म ये हैं—स्नान, सन्ध्या, जप, होम, देवर्षि-पितृ-तर्पण, बलि वैश्वदेव और अतिथि पूजन। करने को तो सभी गृहस्थ इन्हें न्यूनाधिक करते हैं परन्तु नियत समय पर करना लाभप्रद है।

स्नान—प्राजापत्य का फल देता है। त्रिकाल सन्ध्या पालन दीर्घजीवन और मनुष्ययोनि प्रदान करता है। समय से सूर्याराधना से सम्पूर्ण इष्ट फल प्राप्त होता है।

जप—मन का परिष्कार जप द्वारा कर उसे भगवच्चिन्तन में लगाया जाता है।

होम—अग्नि में प्रतिदिन साकुल्य द्वारा आहुति से बाहर भीतर की शुद्धि और पापवासना को जलाकर देवगण को तृप्त किया जाता है।

तर्पण—वंश के आदिपुरुषों और पितृ पितामहादि का श्रद्धासहित तर्पण परम्परा की स्थापना के साथ अष्टविध फल की प्राप्ति।

बलिवैश्वदेव तथा अतिथि पूजन—सायं प्रातः भोजन के पूर्व बलिवैश्वदेव
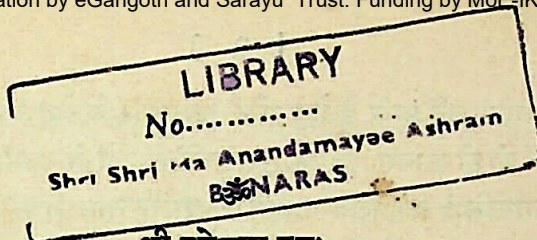
श्री गणेशाय नमः

भूमिका

हमलोग भूमण्डल के निवासी हैं हमारे लिये चन्द्र और सूर्य परम सनातन माता पिता है। यह एक विलक्षण नियम है कि इस भू भौतिकी विज्ञान के युग में भी सम्भव उपायों द्वारा चन्द्र और सौरमण्डल स्थित अन्य ग्रह एवं उपग्रहों तक पहुँचने के प्रयत्न किये जा रहे हैं तो भी ये दोनों 'एताभ्यां पुष्पवद्भ्यां च धारितं जनितं जगत्' तपोनिधि और कलानिधि (सूर्य एवं चन्द्रमा) पृथ्वी मण्डल के प्राणीमात्र का जीवन धारण, पालन, पोषण और संहार करते हैं। सौर परिवार ही हमारी पृथ्वी पर जीवन धारण का मूल कारण है। सूर्य अपनी किरणों द्वारा ग्रीष्म में सभी रसों को खींच लेते हैं और वर्षा के बादल बनाकर जीवनाधार जल का सहस्रधारा रूप से वर्षण करते हैं उसी से, आहार रूप से अन्न, वनस्पति, घास, फल-फूल, पौधे और औषधियों का संग्रह होता है। यही लीला सारी सृष्टि के जनन, पालन और संहार में सूर्य, चन्द्र द्वारा चलती है। 'अहर्निशं सुधावृष्टिं देहे वर्षत्यधोमुखः।'

पद्मपुराणसृष्टि० ८२।९३

यह चन्द्रमा भी अधोमुखी शीतल किरणों से भूमण्डल पर सुधा वृष्टि करता है। प्रकाशोन्मुख जीवन के लिये इन्हीं प्रत्यक्ष देव की आराधना जीवन में आवश्यक है। वास्तव में तपोनिधि सूर्य और कलानिधि चन्द्रमा के कारण ही सृष्टि का यह सारा व्यवहार अक्षुण्ण रूप से चलता रहता है, इसलिये इन्हें नेत्र, गति, प्राण, सम्पत्तिऔर आत्मा कहा गया है। धर्म, अर्थ,

काम और मोक्ष की प्राप्ति के हेतु और भवसागर के सेतु भी ये ही हैं। इन प्रत्यक्ष देवों को ही आगम,, निगम, पुराणादि शास्त्रों में 'उमामहेश्वरस्यार्चा-मर्चयेत्सूर्यनामभिः' कह शिव पार्वती शिवशक्ति नाम दिया है। इनके द्वारा संसार के कल्याण और उद्धार के लिये जो क्रिया कलाप चलता है वह कल्पान्ततक एकरूपता से अव्याहत गति से चालू रहता है। तभी तो विश्व के प्राणीमात्र के ये ही आराध्य हैं ये ही व्रत और सनातन तत्त्व हैं। इन्हें प्रत्यक्ष सर्जक, पालक और संहारक मानकर इनकी आराधना, सेवा, पूजा और अर्चना करना प्रत्येक शरीरधारी मानव का कर्तव्य है। प्रस्तुत संध्या में भारतीय जीवन की अमर अभिलाषा का प्रेरक रूप ही प्रस्तुत है। संध्या सभी मानव, स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, युवा कर सकते हैं, इसलिये यह छोटा सा प्रयत्न ज्ञान, भक्ति और कर्म के प्रेरक प्रत्यक्ष देव की महिमा और उनकी उपासना के रूप में सविधि किया गया है। उपासनाओं का प्रकार अधिकारी भेद से कई भेदों में उपलब्ध है और उनके बहुत बन्धन भी हैं परन्तु इस सीधी सादी परमाराध्य की उपासना के लिये तीनों काल में अपने लिये प्रत्यक्ष देव से केवल सरल मंगनी करनी है जिसकी तुलना अन्यत्र दुर्लभ है। हम सद्गुणों की प्रचुरता का अपने में आधान कर ज़ीवन को उदात्त लक्ष्यों की ओर लगा स्वयं कृतकृत्य होते हैं और अपने साथियों को इस पवित्र कार्य में प्रेरित कर यश एवं पुण्य के भागी बनाते हैं। संसार में विना आत्म निवेदन किये हुए भगवान् के चरणों में भक्ति किये विना कोई वर की याचना करता है तो वह स्वयं ठगा गया।

विना त्वत्पादसेवां च यो वाञ्छति वरान्तरम्।
भारते दुर्लभं जन्म लब्ध्वाऽसौ वञ्चितः स्वयम्॥

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण कृष्णजन्म खण्ड १६।५२

इस संध्या का व्यापक प्रचार निश्चय ही आध्यात्मिक जगत् में राजा

वेन के समय के अनैतिक अपवित्र वातावरण के प्रभाव को सदा सदा के लिये मिटा देगा ऐसी मेरी धारणा है।

आचार को सर्वप्रथम धर्म के साधन का सोपान बताया है इस दृष्टि से संध्या के कलेवर में स्नान, संध्या, तर्पण और व्यायाम के श्लोकों को हमने नाना धर्मशास्त्र पुराणों से संकलित कर बृहदाकार संध्या पुस्तक में परिशिष्ट रूप में दिया है।

स्नानमूलाः क्रियाः सर्वाः श्रुतिस्मृत्युदिता नृणाम्।
तस्मात्स्नानं निषेवेत श्रीपुष्ट्यारोग्यवर्द्धनम्॥
प्रातरुत्थाय यो विप्रः संध्यास्नायी सदा भवेत्।
सप्तजन्मकृतं पापं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति॥
उषस्युषसि यत्स्नानं संध्यास्वनुदिते रवौ।
प्राजापत्येन तत्तुल्यं महापातकनाशनम्॥

बृहद्योगि याज्ञवल्क्य स्मृति ७।११६-११८

मनुष्यों के लिये सम्पूर्ण श्रुति स्मृति धर्मशास्त्रों में कही हुई सभी क्रियायें स्नानमूलक हैं। इसलिये श्री, पुष्टि और आरोग्य को वर्द्धन करने (बढ़ानेवाले) स्नान को अवश्य करे। प्रातः जो व्यक्ति उठकर सन्ध्या के लिये स्नान करता है उसके दीर्घकाल के जन्मों के पाप तीन वर्ष में ही नष्ट हो जाते हैं। बहुत तडके प्रातः काल में सूर्योदय के पहले और तीनों सन्ध्याओं (प्रातः; मध्याह्न और सायंकाल) में जो स्नान किया जाता है वह प्राजापत्य यज्ञ के समान फलदायी है। अन्य पातक उपपातक की तो बात ही क्या। यह स्नान महापातकों को भी जड़मूल से नष्ट करनेवाला है।

अस्नात्वा नाचरेत्कर्म जपहोमादि किञ्चन।
लालास्वेदसमाकीर्णः शयनादुत्थितः पुमान्॥
क्लिद्यन्ति हि प्रसुप्तस्य इन्द्रियाणि स्रवन्ति च।
अङ्गानि......

यथाकालं यथादेशं ज्ञात्वा ज्ञात्वा विचक्षणः ॥
स्नानाचरणमित्येतत्समुद्दिष्टं महात्मभिः ।

जप, होम, उपासना, सन्ध्या आदि शुभकार्य बिना स्नान किये नहीं किये जांय, क्योंकि सोने से मलिन हुआ व्यक्ति लार पसीना से समाकीर्ण रहता है, सोये हुए की सभी इन्द्रियां और रोमकूपों में पसीना मलादि का निस्सरण होता है। इसलिये स्नान से सभी रोमकूपों और शरीर की सभी इन्द्रियां की शुद्धि कर नित्यकर्म में बैठना चाहिये। देश, काल और अपने शरीर की शक्ति के अनुसार स्नान ही करे।

नित्यकर्माकरणात् प्रत्यवायकारणानि (गृह्यसूत्र)

नित्य कर्मों के न करने से प्रत्यवाय (दोष) लगता है। अतः नित्यकर्मों को यथाशक्ति समय पर करना इष्ट है।

स्नान के माध्यम से १० गुणों की प्राप्ति होती है।

गुणाः दशस्नानकृतो हि पुंसो रूपं च तेजश्च बलं च शौचम्।
आयुष्यमारोग्यमलोलुपत्वं दुःस्वप्ननाशं च तपश्च मेधा ॥
विश्वामित्र स्मृति १।१८

स्नान करने पुरुष वाले को अनायास ही दस गुण मिलते हैं वे हैं :—रूप तेज, बल, शौच (शुद्धि) आयु, आरोग्य, अलोलुपता (मन की स्थिरता) दुःस्वप्ननाश, तपस्या और मेधा। (जो भी बुरे कार्य बनते हैं उनके मूल में मनुष्यों के मन बुरे संस्कार ही एक मात्र कारण हैं जब स्नान द्वारा सारा शरीर निर्मल होकर बाहर और भीतर से शुद्ध हो गया तो बुरे संस्कार विदाही हो जाते हैं।

मेरी तो धारणा है कि स्नान से अन्दर का और बाहर का दोष निकल जाता है और पाचन शक्ति को बल मिलता है। स्नान कर सन्ध्या बन्दन करने वाले को आसन प्राणायाम की क्रिया से अपनी शारीरिक क्रियाओं

को स्वस्थ रखने का अनायास ही सुअवसर मिल जाता है। जीवन का सबसे उच्च ध्येय परम माता पिता प्रत्यक्ष देव भगवान् सूर्य की आराधना और उनकी वाणी शास्त्रों के आदिष्ट मार्ग पर चलना है। यदि यह छोटा सा भी प्रयत्न हम जीवन भर एक रस से चला सकें तो परम पिता की असीम अनुकम्पा के पात्र हम बन गये। इस पुस्तिका में सन्ध्या के विषय में जानने योग्य आवश्यक बातें और सन्ध्या विवेचन सहित गायत्री महिमा तथा भगवन्नाम का विवरण प्रस्तुत है। परन्तु सबसे महत्व की बात तो है सर्वसाधारण की प्रार्थना इस सीधी सादी प्रार्थना में आबाल, वृद्ध, वनिता, अधिकारी, अनधिकारी सभी का एकाधिकार है। उसे नियत समय पर "मन्देहदेहनाशाय" मन्द बुद्धि राक्षसों से आत्मा को बचाने के लिये किया जाय तो अवश्य ही लाभ मिलेगा। आगे सविधि भावानुवाद सहित सन्ध्या का विवरण है और देवर्षि पितृतर्पण (उन सुयोग्य गृहस्थों के करने के लिये है जिनके माता पिता का शरीर विद्यमान नहीं है) है। पुत्र की पुत्रता माता पिता की आज्ञा का पालन (आदेश में चलने) और उनके ऊर्ध्वगति होने पर उन्हे अनुदिन तर्पण द्वारा तृप्त करने में है। जीवन में 'यं माता पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्। न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं जन्म शतैरपि।" माता पिता के द्वारा पालन पोषण के कर्तव्यों का बदला चुकाने के लिये यदि हम सौ जन्म धारण करें और उनकी आज्ञा में चलें तो भी उऋण नहीं हो सकते।

फिर भी 'अपत्यं पततां पोतं बहुक्लेशमहार्णवे।"

स्कन्द काशीखण्डपूर्वार्द्ध ३२।११।१२

बहुत दुःखपूर्ण जञ्जालमय भवाटवीके संसार रूपी समुद्र में गिरे हुए पूर्वजों को निकालने के लिये पुत्र ही पोत है समुद्री यान है। हमें इसीलिये पर्वजों के दुरितक्षय के लिये ईश्वराराधना, पित्रेश्वरों की भक्ति (तर्पण

द्वारा) और व्यायाम द्वारा शरीर को पुष्ट कर परमध्येय को प्राप्त करना चाहिये।

इस विषयमें मैं निवेदन करना चाहूँगा कि सन्ध्या प्रार्थना सभी आबाल, वृद्ध, वनिता, स्त्री पुरुषों के लिये नया उपक्रम नहीं है। यह तो परम्परा से अनन्तानन्त समय से हमें मिला हुआ क्रम है। हमें अपने शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये इस सदनुष्ठान को प्रचलित करना है। इसकी अद्भुत क्षमता और गौरव हमें सावंजनिक रूपमें प्रतिष्ठित कर हम जगत् को सदुद्देश्यों एवं सत्कार्यों से जीवन के योग्य बना अपना और सब का कल्याण करें यही इसका लक्ष्य है और वह भी सबसे उन्नत बुद्धि को शुभकामों में लगाने की प्रेरणा द्वारा एक ही साधन उदात्त लक्ष्य तक अनायास हमें पहुँचा दे। अस्तु

सन्ध्या विशाल वट वृक्ष के बीज के समान छोटा होने पर भी बड़ी बड़ी अप्रत्याशित सफलताओं और उपलब्धियों से परिपूर्ण है। एक ही नियत समय पर काम करने की प्रवृत्ति सन्ध्या में इतने सुफल सँजोए हुये हैं कि हमारी तमोगुणी भावनायें नष्ट होंगी,दीनता हीनता हमम नाम को नहीं रहेगी, अपने चारों ओर प्रत्यक्ष देव सूर्य के पुरुषार्थमय जीवन के उदाहरण से हमें कभी भी किसी कार्य में पराजय का अवसर नहीं आयेगा; उत्तरोत्तर आत्मवल, मनोबल, ज्ञानवल, क्रियावल, इच्छा शक्ति और दिव्य शारीरिक गुणों का विकास हमारे जीवन को सफलता की ओर अग्रसर करेगा।

देखिये:—

मन्देहदेहनाशार्थमुदयास्तमये रविः। समीहते द्विजोत्सृष्टं मन्त्रतोयाञ्जलित्रयम्। गायत्रीमन्त्रतोयाढ्यं दत्तं येनाञ्जलित्रयम्। काले सवित्रे किं न स्यात्तेन दत्तं जगत्त्रये॥ किं किं न सविता सूते काले सम्यगुपासितः।

आयुरारोग्यमैश्वर्यं वसूनि स पशूनि च। मित्रपुत्रकलत्राणि क्षेत्राणि विविधानि च। भोगानष्टविधांश्चापि स्वर्गं चाप्यपवर्गकम्॥

स्कन्द० काशी ख० पू० अ० ९-श्लोक ४ -४८

भगवान् सूर्यनारायण उदय एवं अस्त के समय मन्देह नामक दानवों के शरीरनाश के लिये द्विज जनों के द्वारा मन्त्र पूर्वक दी गई तीन अञ्जलि की इच्छा करते हैं। जिसने नियत समय पर सूर्यनारायण के लिये गायत्री मन्त्रोच्चारणपूर्वक तीन अञ्जलि प्रदान की है उसने तीनों में भगवान् सूर्य को क्या नहीं दिया अर्थात् भगवान् को सब अर्पण कर दिया। समय पर अच्छी प्रकार उपासना करने से सूर्यनारायण क्या क्या नहीं देते। वस्तुतः सभी चीजें आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन, पशु, मित्र, पुत्र, स्त्री नाना प्रकार के उन्नति के व्यापक क्षेत्र आठ प्रकार के भोग, स्वर्ग और मोक्ष तक वह देते हैं। बस थोड़ा मनको मनाकर आप प्रातः काल शय्या त्याग कर शौच स्नान से निवृत्त होकर आसन पर प्रार्थना के लिये निश्चित समय पर बैठिये। दीखने में यह छोटा सा साधन है परन्तु इसकी उज्ज्वल विलक्षणता का लाभ सहस्रधाराओं में हमें समय समय पर मिलता रहेगा यह ध्रुव है। सूर्य के पुरुषार्थ का अनुकरण सूर्य के ध्यान से और उसी के समान क्रांतदर्शी होने की प्रेरणा से हमारे लिये इस विश्व में क्या सम्भव नहीं है। इसलिये सभी विश्व भर के कृपालु महानुभावोंसे प्रार्थना है कि इस सरल साधन को जीवन में क्रियान्वित कर तत्काल अपनी सफलता को निश्चित गारण्टी का अद्भुत कार्य अपने अधिकार में करें। इसकी उपलब्धियों का विस्तार तो जीवन में क्रियात्मक साधना हीं से अनुभूत होगा। मेरी निश्चित धारणा है कि हमारा चारित्रिक उत्थान, जीवन में चामत्कारिक उपलब्धियां और सबसे ऊपर सम्पूर्ण विश्व में हम सर्वभूतहिते रताः बन कर दिव्यवातावरण का विस्तार इतनी शीघ्रता से

कर पायेंगे कि हमारी अविद्या (अज्ञान) मिटकर सत्वगुण के प्रकाश से सारा विश्व लहलहा जायेगा। एक ही बात की धारणा से जब हम अपना अपने आस पास के निकटवर्ती समाज के लोगों का और विश्व का कल्याण साधन कर सकें तो इससे बड़ी बात और क्या होगी। अतः सभी इष्ट मित्रों हितैषियों को इस पवित्र सन्ध्या अनुष्टान में लगा कर विश्व के असद्वातावरण को सदा के लिये अन्त करने में पूर्ण सहयोग कीजिये। बुद्धि, मन और आत्मा का उत्कर्ष ही सम्पूर्ण प्राणी जीवन का सृष्टि के उत्थान का कारण है। वह हमें परम पुरुषार्थी सूर्य नारायण के क्रियाशील जीवन की प्रेरणा से सन्ध्या प्रार्थना द्वारा सहज ही सुलभ होगा।

वेदोदितं स्वकं कर्म्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।
अकुर्वाणः पतत्याशु नरकान्याति भीषणान्॥
कूर्म० ब्राह्मी० १४।१५

कभी वेदोदित अपने कर्मों के अनुष्ठानों में अवहेलना (ढीलापन) न करे उन्हें नित्य ही आलस्य का त्याग कर अनुष्ठित करे। उन्हें न करने वाले का शीघ्र पतन अनिवार्य है और उसे भीषण नरकों में जाना पड़ता हैं।

चतुर्दशानां विद्यानां धारणं हि यथार्थतः
विज्ञानमिति तद्विद्याद्येन धर्मो विवर्द्धते।
कूर्म ब्राह्मी० १५।३२

चतुर्दश विद्याओं को यथार्थ रूप से अध्ययन, ज्ञान, आचरण और प्रचार के द्वारा प्राप्त कर विज्ञान की अभिवृद्धि करे और उससे धर्म की महिमा (सत्य ज्ञान प्राप्ति के माहात्म्य) को बढ़ाता चले। इस जीवन में विशेष विद्या के द्वारा ही साक्षात्देव महादेव का स्वरूप साक्षात्कार होता हैं वही वास्तविक ज्ञान है। इसलिए विद्वान् नित्यहितनिष्ठ तत्पर, अक्रोधन (कोध से

रहित) शुचि हो (वाह्य और आभ्यन्तर से पवित्र) महायज्ञों का (देवयज्ञ, पितृयज्ञ, ऋषियज्ञ, मनुष्ययज्ञ और ब्रह्मयज्ञ) अत्युत्तम अनुष्ठान करता रहे। धर्म का आयतन (निवास स्थान) शरीर है इसे भली प्रकार रक्षा करे। देह के विना साक्षात् भगवान् का दर्शन दुर्लभ है इसलिये धर्म, अर्थ और कामों में संयमपूर्वक लगे धर्म से वर्जित काम अथवा अर्थ का मन से भी स्मरण न करे।

यया स देवो भगवान् विद्ययावेद्यते परः।
साक्षाद्देवो महादेवस्तज्ज्ञानमिति कीर्तितम् ॥
तन्निष्ठस्तत्परो विद्वान्नित्यमक्रोधनः शुचिः।
महायज्ञपरो विद्वान्नभवेत्तदनुत्तमम् ॥
धर्मस्यातनं यत्नाच्छरीरं पतिपालयेत्।
न च देहं विना रुद्रो विद्यते पुरुषैः परः ॥
नित्यं धर्मार्थकामेषु युज्येत नियतो द्विजः।
न धर्म्मवर्ज्जितं काममर्थं वा मनसा स्मरेत् ॥

ब्राह्मी संहिता १५।३६-३८

संसार में अपने लिये अर्जन करना और व्यय करना यह क्रम चलता रहता है व्यय कम करने से अर्जित धन सम्पत्ति सदा ही अवसर सुअवसर पर काम आती है। यही बात हमारे शरीर में शक्ति संचय करने की वृत्ति के लिये है। शक्ति को सदैव ही संचय करना और व्यय करना होता है। जो मानव शरीर का लाभ पाकर अनावश्यक कार्यों में इसका क्षय करता है वह निश्चय ही आत्मा और शरीर के साथ कृतघ्नता करता है। अत- उसे अनावश्यक कार्यों में न लगा प्रभु की आज्ञा उनके आदेश शास्त्रोक्त विधि कर्तव्य का पालन कर दुर्गुणों से बचने और सद्गुणों से भण्डार घर को भरकर उपयुक्त दिशा में लगाना चाहिये। बीज की शक्ति का ह्रास न हो

इसका सदा ध्यान रखना आवश्यक है। इसके लिए जिह्वा के द्वारा वाणी और लौल्य-स्वाद का एवं उपस्थइन्द्रिय के संयम द्वारा वीर्य की रक्षा करते हुए मानव को प्रभु के आदिष्ट मार्ग पर लगाकर काम विजय करनी चाहिये। जिह्वा लौल्य और उपस्थ की कामुकता अकीर्तिकर है प्रत्येक बुद्धिमान को सत्य वचन एवं मौन साधन के साथ वाणी को भगवन्नाम, शास्त्रों के अध्ययन, मनन एवं चिन्तन में तथा वीर्य रक्षा द्वारा शक्ति का संचय कर विश्व के कल्याण में स्वयं को लगाना चाहिये। तपसे ब्रह्माजी ने बीज की रक्षा की (छान्दोग्योपनिषद्)

प्रातःकाल शयन से शय्या त्याग कर के किसी भी रूप में आल्यस्य वश या प्रमाज वश फिर नहीं सोना चाहिये।

देखिये :—

उत्थायाऽपररात्रावधीत्य न पुनः प्रति संविशेत् । प्राजापत्ये मुहूर्त्ते ब्राह्मणः काँश्चिन्नियमाननुतिष्ठेदनुतिष्ठेत् ।

वशिष्ठ स्मृति । १२।४४। ४५

हमलोग इस मानव जीवन में कमाई करने को आये हैं न कि खोने के लिये। इसलिये ज्ञानपूर्वक शुभकर्मों को करते हुए हमें जीवन का अमित लाभ लेना चाहिये। बालकों में तो शरीर की विकास शीलता और मन, बुद्धि के एकाग्र करने की प्रवृत्ति शीघ्र फल करती है उनके लिये शीघ्र ही संस्कार द्वारा उपनयन दिलाकर भगवान् सूर्य की आराधना में लगा उनका भविष्य उज्ज्वल करना सभी माता पिता और अभिभावक वृन्द का परम कर्तव्य है। यदि इसमें सफल हो गये तो समझ लीजिए दीर्घकाल की अकर्मण्यता से छुटकारा पाकर क्रियाशील, दीर्घजीवी, उदार मानवता एवं गतिशील जीवन का संसार को आपकी देन होगी।

उपर्यक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया कि सन्ध्या का काल ३

घड़ी अवधिवाला उत्तम है। इससे मध्यम काल का अपने विश्वाराध्य प्रभु के ध्यान के लिये समय देना अवाञ्छनीय है।

प्रातःकाल में सूर्योदय के दो घड़ी पूर्व तक सन्ध्या में बैठे व एक घड़ी बाद तक जप करता रहे।

मध्यान्ह में सूर्यार्घ्य को एक बार करे और जप करे।

सायंकाल १ घड़ी पहले सूर्यास्तमें बैठे और दो घड़ी बाद तक जप करता रहे।

जप की विधि में अखण्डमण्डलाकार प्रकाशपुञ्ज भगवान सूर्य नारायण के देवाधिदेव रूप का सतत आँखों को बन्द कर ध्यान करता रहे। इस ध्यान सहित जप से सिद्धि शीघ्र मिलती है।

"जापध्यानादियुक्तस्य विष्णुः शीघ्रं प्रसीदति। (अग्निपुराणे)

इस सन्ध्या विधि को मनुष्य देह पाकर निश्चय ही प्रत्येक स्त्री पुरुष मनुष्य मात्र आबाल वृद्ध वनिता को करना ही चाहिये। जो यज्ञोपवीती हैं वे वैदिक विधि से और जो अनुपवीती है सूर्यको अर्घ्य देकर अपने इष्ट देव की आराधना द्वारा कर सकते हैं।

यह शरीर परम माता पिता से आविर्भूत हुआ है। उसके भौतिकरूप से देहादि धारण करने के निमित्त हैं जन्म देने वाले माता पिता। अहर्निश उन परम पिता धाता विधाता भगवान् और जन्म दाता मा बाप के उपयोग में जिन धन्य भाग्य व्यक्तियों का शरीर आया तो जीवन की सफलता है। वह जीवन ही क्या जब इस उपासना से मानव जीवन वञ्चित हो गया?

अतः एक दिन भी त्रिकाल सन्ध्या में भगवान की उपासना किये बिना न रहे। सन्ध्या की सफलता मन के लगाने पर है। यदि इस शरीर को परम माता पिता और जन्म देने वाले माता पिता की वास्तविता आयेगा (शास्त्र) और उनके कल्याणदायी मार्गों का अनुसरण कर सफल नहीं

इसका सदा ध्यान रखना आवश्यक है। इसके लिए जिह्वा के द्वारा वाणी और लौल्य-स्वाद का एवं उपस्थइन्द्रिय के संयम द्वारा वीर्य की रक्षा करते हुए मानव को प्रभु के आदिष्ट मार्ग पर लगाकर काम विजय करनी चाहिये। जिह्वा लौल्य और उपस्थ की कामुकता अकीर्तिकर है प्रत्येक बुद्धिमान को सत्य वचन एवं मौन साधन के साथ वाणी को भगवन्नाम, शास्त्रों के अध्ययन, मनन एवं चिन्तन में तथा वीर्य रक्षा द्वारा शक्ति का संचय कर विश्व के कल्याण में स्वयं को लगाना चाहिये। तपसे ब्रह्माजी ने बीज की रक्षा की (छान्दोग्योपनिषद्)

प्रातःकाल शयन से शय्या त्याग कर के किसी भी रूप में आल्यस्य वश या प्रमाज वश फिर नहीं सोना चाहिये।

देखिये :—

उत्थायाऽपररात्रावधीत्य न पुनः प्रति संविशेत्। प्राजापत्ये मुहूर्त्ते ब्राह्मणः कांश्चिन्नियमाननुतिष्ठेदनुतिष्ठेत्।

बशिष्ठ स्मृति। १२।४४। ४५

हमलोग इस मानव जीवन में कमाई करने को आये हैं न कि खोने के लिये। इसलिये ज्ञानपूर्वक शुभकर्मों को करते हुए हमें जीवन का अमित लाभ लेना चाहिये। बालकों में तो शरीर की विकास शीलता और मन, बुद्धि के एकाग्र करने की प्रवृत्ति शीघ्र फल करती है उनके लिये शीघ्र ही संस्कार द्वारा उपनयन दिलाकर भगवान् सूर्य की आराधना में लगा उनका भविष्य उज्ज्वल करना सभी माता पिता और अभिभावक वृन्द का परम कर्तव्य है। यदि इसमें सफल हो गये तो समझ लीजिए दीर्घकाल की अकर्मण्यता से छुटकारा पाकर क्रियाशील, दीर्घजीवी, उदार मानवता एवं गतिशील जीवन का संसार को आपकी देन होगी।

उपर्यक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया कि सन्ध्या का काल ३

घड़ी अवधिवाला उत्तम है। इससे मध्यम काल का अपने विश्वाराध्य प्रभु के ध्यान के लिये समय देना अवाञ्छनीय है।

प्रातःकाल में सूर्योदय के दो घड़ी पूर्व तक सन्ध्या में बैठे व एक घड़ी वाद तक जप करता रहे।

मध्यान्ह में सूर्यार्घ्य को एक बार करे और जप करे।

सायंकाल १ घड़ी पहले सूर्यास्तमें बैठे और दो घड़ी वाद तक जप करता रहे।

जप की विधि में अखण्डमण्डलाकार प्रकाशपुञ्ज भगवान सूर्य नारायण के देवाधिदेव रूप का सतत आँखों को बन्द कर ध्यान करता रहे। इस ध्यान सहित जप से सिद्धि शीघ्र मिलती है।

"जापध्यानादियुक्तस्य विष्णुः शीघ्रं प्रसीदति। (अग्निपुराणे)

इस सन्ध्या विधि को मनुष्य देह पाकर निश्चय ही प्रत्येक स्त्री पुरुष मनुष्य मात्र आबाल वृद्ध वनिता को करना ही चाहिये। जो यज्ञोपवीती हैं वे वैदिक विधि से और जो अनुपवीती है सूर्यको अर्घ्य देकर अपने इष्ट देव की आराधना द्वारा कर सकते हैं।

यह शरीर परम माता पिता से आविर्भूत हुआ है। उसके भौतिकरूप से देहादि धारण करने के निमित्त हैं जन्म देने वाले माता पिता। अहर्निश उन परम पिता धाता बिधाता भगवान् और जन्म दाता मा बाप के उपयोग में जिन धन्य भाग्य व्यक्तियों का शरीर आया तो जीवन की सफलता है। वह जीवन ही क्या जब इस उपासना से मानव जीवन वञ्चित हो गया ?

अतः एक दिन भी त्रिकाल सन्ध्या में भगवान की उपासना किये बिना न रहे। सन्ध्या की सफलता मन के लगाने पर है। यदि इस शरीर को परम माता पिता और जन्म देने वाले माता पिता की वास्तविता आयेगा (शास्त्र) और उनके कल्याणदायी मार्गों का अनुसरण कर सफल नहीं

नहीं किया और भगवान और माता पिता के लिये अर्पण नहीं किया तो केवल श्वांस का खाला है ; शरीर का प्राणवायु की धौंकनीसे वह मनुष्य खाली श्वांस अन्दर खींचने और बाहर निकालने का काम लेकर जीवन व्यर्थ बिताता है। सफल जीवन माता पिता और धाता विधाता भगवान् की इष्ट वन्दना का नाम है।

इसलिये मेरी सभी माता पिता और अभिभावकों से प्रार्थना है कि वे अपने बालकों में समय पर सन्ध्या उपासना का भाव भरें; उन्हें विधि समेत सन्ध्या सिखावें तथा यज्ञोपवीत (जनेऊ) दिलाकर ऊंचे संस्कारी बनावें। समय के बोये हुए मोती निपजते हैं सन्ध्या को समय पर बरतना इनका प्रत्यक्ष प्रमाण है। "सन्ध्या" इस लघु पुस्तिका का सामयिक शास्त्रीय संकलन के साथ कुम्भ महापर्व में जनता जनार्दन की सेवार्थ अमृत तत्त्व की क्रियात्मक प्राप्ति हेतु भेंट करते हुए प्रसन्नता होती है।

इस कार्य को आगे बढ़ाने की प्रेरणा श्रीमान् आचार्य कालीप्रसादजी खेतान वार-एट-ला से मिली। आज से कई वर्षों पूर्व जब मैं सन्ध्या द्वारा भारतीय संस्कारिता के प्रचार और प्रसार के विषय को लेकर उनसे भेंट करने गया तो श्री खेतानजी ने शुद्ध शुद्ध मन्त्रों के उच्चारण विधि के साथ साथ उनके अर्थ के ज्ञान पर विशेष जोर देते हुए संध्याके मंत्रोंमें निहित विलक्षणता का विशद विवेचन किया। मेरे विशेष आग्रह पर ही आपने "सन्मार्ग" कलकत्ता में सन्ध्या और "सदाचार" की लेखमाला ७ मई १९६३ से १३ मई तक एकान्तर से निकलवाई जिसे सर्व साधारण जनता व विद्वद्वर्ग ने समुचित आदर किया।

अतः वह लेख और व्याख्या साथ २ छपाई गई है। श्रीखेतानजी का मैं सर्वथा कृतज्ञ हूँ।

तीर्थावगाहन आत्मावगाहन का विशिष्ट परिचायक है एतदर्थ इस पुस्तक में दिये गये उपासना साधन को जीवन में चरितार्थ कर चतुवर्ग (धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष) की प्राप्ति कर सभी वरों की प्राप्ति से आप सभी जीवन धन्य बनावें। यही विनम्र निवेदन कर उपसंहार करता हूँ।

"कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।"

मकर संक्रान्ति
२०२२ वि०
कुम्भमेला, प्रयागराज

भवदीय
मनसुख राय मोर

सन्ध्या के विषय जानने योग्य आवश्यक बातें

सन्ध्या द्वारा त्रिदेव की प्राप्ति

संध्या को नियमित समय पर पालन करने से त्रिदेवों की अनुस्यूत परम दैवी शक्ति का लाभ मिलता है।

स्कन्दपुराण के रेवाखण्ड में वर्णित अत्रि एवं अनसूयाजी के आख्यान से यह पुष्ट होता है।

महासती अनसूया जी और अत्रि-मुनि को जब वृद्धावस्था में भी पुत्ररत्न की प्राप्ति नहीं हुई तो दोनों पति-पत्नी ने इस वैतरणी पार लगाने वाली पुत्र सम्पत्ति की प्राप्ति की परस्पर मंत्रणा की। अत्रि जी ने तपस्या से इस पुत्र रत्न की प्राप्ति को सम्भव बताया और अपनी ओर से वृद्धावस्था के कारण तपस्या के लिये असमथता प्रगट की। तब सती अनसूया जी ने पति-देव की आज्ञा से कठिन तपस्या की, जो १०० वर्षों तक चली।

"प्रातःस्नानं ततः सन्ध्यां कुर्याद् देवर्षितर्पणम्।
देवानामर्चनं कृत्वा होमं कुर्याद् यथाविधि॥

स्कन्दपुराण रेवाखण्ड १०२।३३

वह महासती प्रातः स्नान के बाद सन्ध्या, देवर्षि-पितृ-तर्पण और देव पूजन कर यथा विधि हवन करतीं। इस नित्यकर्म की समय पर नियत साधना करने से उन्हें सफलता मिली। समय आने पर ब्राह्मणगण के छद्म वेष में ब्रह्मा, विष्णु और महेश उपस्थित हुए।

अनसूयाजी ने उन्हें आन्तरिक शुद्धचित्त में ध्यान लगाकर जगत् के उत्पादक, पालक और संहारक त्रिदेव के रूप में पहचान लिया। जब तीनों ने अपने स्वरूप सहित दर्शन देकर सती से वर माँगने को कहा तो महासती ने अपनी कोख में उन्हें पुत्र रूप में स्वयं आने का अनुरोध रूपी वर माँगा।

त्रिदेव ने उन्हें अपने अंशों को भेजकर उनकी आन्तरिक इच्छा पूरी करनी चाही; परन्तु धन्य सती अनसूया ! वह अपने प्रण पर निश्चल अटल रही तब कहीं ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने पुत्र बनना स्वीकार किया। ये तीनों ही परम सौभाग्यवती पुण्यश्लोका सती अनसूया के अयोनिज पुत्र चन्द्रमा, दत्तात्रेय और दुर्वासा रूप में अवतरित हुए।

देखिये, नित्य सन्ध्या करने से ही साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश भगवान पुत्र रूप में भगवती अनसूयाजी को प्राप्त हुए। जहाँ संध्या का नियत समय पर पालन होगा वहाँ त्रिदेवों की शक्ति मानव को मिलेगी इससे बड़ा लाभ और क्या हो सकता है ?

सन्ध्या के लिये सद्गृहस्थ महिलाओं में जागरूकता की परम्परा

भगवती मनसा को कश्यपजी ने जरत्कारु मुनीन्द्र के साथ पाणिग्रहण संस्कार में ब्राह्मणाज्ञा से दे दिया। इस ववाहिक संस्कार का मूल जरत्कारु का पित्रेश्वरों का वंश चलाने का आदेश सर्वत्र ही पुराणों में मिलता है। महर्षि जरत्कारु ने एक ही बात पर यह विवाह करना और दम्पती युगल के रूप में गृहस्थ जीवन में रहना स्वीकार किया कि मनसा उनके सर्वदा अनुकूल रहे। थोड़ा भी उनके मनोनुकूल न होने से वे पत्नी को परित्यक्त (छोड़) कर चले जायेंगे। अस्तु

एक वार सती मनसा के जंघाप्रदेश में सिर रख कर जरत्कारुजी दीर्घकाल तक तपस्या से थक कर वट के मूल में सो गये। इसी निद्रावस्था में सायंकाल का समय हो गया मन्ध्या वेला सन्निकट आने लगी। महा-सती मनसा अब यह विचार करने लगी कि यदि ऋषि को जगाती हूँ तो पति का अप्रिय होता है और नहीं जगाती हूँ तो धर्म का लोप का भय है कारण कि सन्ध्यावेला का लोप करने से ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त का दोष उन्हें लगेगा।

"जगामास्तं दिनकरः सायकाल उपस्थिते ।
सञ्चिन्त्य मनसा साध्वी मनसा सा पतिव्रता ।।
धर्मलोपभयेनैव चकारालोचनं सती ।
अकृत्वा पश्चिमां सन्ध्यां नित्यां चैव द्विवजन्मनाम् ।।
ब्रह्महत्यादिकं पापं लभिष्यति पतिर्मम ।
नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ।
स सर्वत्राशुचिः नित्यं ब्रह्महत्यादिकं लभेत् ।
वेदोक्तमिति सञ्चिन्त्य बोधयामास सुन्दरी ।।
सच बुद्धो मुनिश्रेष्ठस्तां चूकोप भृशं मुने !

देवी भागवत ६ ४८।२७-३०

अर्थ सन्ध्या काल उपस्थित होने पर वह साध्वी पतिव्रता मन से सोच लगी और धर्म लोप के भय से वह इस पर आलोचना कर नित्य सन्ध्या कर ने वाले द्विजातियों को एक सन्ध्या में नित्यकर्म का लोप होता है तो मेरे पति को ब्रह्महत्या का पाप लगेगा। क्योंकि वेद में यह प्रमाण है कि जो त्रिकाल सन्ध्या नहीं करता वह व्यक्ति सर्वथा अशुचि है और उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है। बस सती ने "धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा" के अनुसार पति की अनुकूलता को गौण बना सन्ध्या के लिये अपने आपको भी परित्याग करने का भारी त्याग लेकर भी धर्म लोप न हो इसलिये पति को जगा दिया। बस जरत्कारु क्रुद्ध हुए अपना अप्रिय होने से उन्होंने अपने को प्रण के अनुसार सती मनसा का परित्याग कर दिया। सूर्य उनके सायं सन्ध्या के अर्घ्य दान विना नहीं जा सकते ऐसा मुनि जरत्कारु ने कहा। जब सूर्य ने आकर जरत्कारु को समझाया कि सती ने आपके धर्मरक्षार्थ यह सब किया तब भी मुनि निश्चय पर अटल रहे। हाँ उन्होंने इतना अवश्य आश्वासन दिया कि जिस वंशवृद्धि के लिये उन्होंने गृहस्थ सेवन किया है वह अंश

मनसाके धारण हो गया है और ऐतिहासिक आस्तीक महाराज ही इस वंश-बर्द्धक ऋषि की सन्तान प्रसिद्ध हुए।

उपर्युक्त आख्यान में मनसा द्वारा अपने जीवनधन पति के द्वारा परित्याग की चिन्ता न कर उनके धर्म की रक्षा में अपना उत्सर्ग किया और सन्ध्या काल का लोप न होनेदिया इसतथ्य का उत्कृष्ट अवर्णनीय आदर्श है जो वास्तव में स्त्री को रक्षिका नाम से यथा नाम तथा गुणः का दृष्टान्त प्रस्तुत करता है। प्राचीन समय में स्त्रियां अपना सर्वस्व न्यौछावर करके भी धर्म का लोप नहीं होने देती थीं।

निश्चित समय पर ही संध्या उपासना फल देती है।

अनुक्तकाले कृतकर्म निष्फलम् अकालवृष्टिः पतिता यथा भुवि।
उप्तानि बीजानि विनिष्फलानि वा करोत्यकालः कृतकर्म निष्फलः ॥
नियुक्तकर्माणि, नियुक्तकाले, कृतानि सद्यः सुखसिद्धिदानि।
यथोप्तबीजानि यथा फलानि, काले हि वृष्टिर्भुवि जीवनानि ॥
(विश्वामित्रस्मृति) १।२०-२१

संध्याकाल का लोप करने पर किया हुआ नित्यकर्म उसी तरह फलदायक नहीं होता जिस प्रकार असमय पर गिरा हुआ वर्षा का जल निष्फल होता है। समय पर वर्षा हुए बिना वोये बीज जीवन रूप जल के न मिलने पर निष्फल (व्यर्थ) हो जाते हैं, उसी प्रकार समय का उल्लंघन करने से किया हुआ कर्म निष्फल समझिये। नित्य समय पर किया हुआ नित्यकर्म सद्यः (तत्काल) सुख और सिद्धि को देनेवाला है। जैसे समय पर वर्षा होते ही बीज बोने से ऋतु के अनुसार सस्यधान्यादि खूबपुष्ट होकर पृथ्वी के प्राणीमात्र का जीवन साधन करते हैं, तथा जिस प्रकार अन्न जीवन द्वारा प्राणिवर्ग का उपकार साधन होता है उसी प्रकार समय पर

किये हुए नित्यकर्म ही प्रभूत फलदायक होते हैं। अतः समय पर नित्यकर्म किये जांय।

शुचिर्वाऽप्यशुचिर्वाऽपि नित्यं कर्म न सन्त्यजेत्।
तत्राऽपि कालनियमादर्घ्यदानं विशिष्यते॥

विश्वामित्रस्मृति १।२५

सूर्य को नियम से काल लोप किये विना अर्घ्य देना विशेष फलदायक है।

उपलभ्य च सावित्रीं नोपतिष्ठेत यः पराम्।
काले त्रिकालं सप्ताहात्स पतेन्नाऽत्र संशयः॥
तावत्प्रातर्जपंस्तिष्ठेद् यावदर्धोदयो रवेः।
आसनस्थो जपेन्मौनी प्रत्यगातारकोदयात्॥
सादित्यां मध्यमां सन्ध्यां जपेदादित्यसम्मुखः।
काललोपो न कर्तव्यस्ततः कालं प्रतीक्षयेत्॥
काले फलन्त्योषधयः काले पुष्पन्ति पादपाः।
वर्षन्ति तोयदाः काले तस्मात्कालं न लङ्घयेत्॥

स्कन्द० काशी खण्ड पूर्वार्द्ध ६।४१-४४

समय पर जो तीनों काल सन्ध्या उपासना (सूर्यकी) नहीं करता निश्चय ही उसका सात दिन में ही पतन हो जाता है। प्रातःकालमें तारागणके रहते हुये ही सूर्य के सम्मुख पूर्व दिशा की ओर मुंह कर जप करता रहे और सूर्य के उदय होने के साथ ही अर्घ्य नियमित समय पर दे। काल लोप नहीं होने देना चाहिये इसलिये काल अर्थात् सूर्योदय, मध्याह्न और सूर्यास्त के निश्चित समय की प्रतीक्षा करें। समय पर ही औषधियां फलती फूलती है, समय पर ही वृक्ष पुष्पित होते हैं, समय पर ही बादल वर्षा करते हैं इसीलिये काल का लोप न करे।

प्रातस्तावज्जपंस्तिष्ठेद्यावत्सूर्यस्यदर्शनम्।
उपविष्टो जपेत्सायमृक्षाणामाविलोकनात्॥

काललोपो न कर्तव्यो द्विजेन स्वहितेप्सुना ।
अर्धोदयास्तसमये तस्माद्वज्रोदकं क्षिपेत् ॥
विधिनाऽपि कृता सन्ध्या कालातीताऽफलाभवेत् ।
अयमेव हि दृष्टान्तो वन्ध्यास्त्रीमैथुनं यथा ॥

स्कन्दपुराण काशी खण्ड पूर्वार्द्ध ३५।१५५-१५७

प्रातः काल सूर्य के दर्शन होने तक जप करते हुए रहे इसी प्रकार मध्याह्न में सूर्य की किरणों के ऊर्ध्वगामी होने पर जप में बैठे और अधोगामी होते ही अर्घ्य दे फिर सायंकाल सूर्य अस्त होने के पहले उपासना में बठ जाय और तारागण के उदय होने तक जप करता रहे। अपना हित चाहने वाले मनुष्य को काल का लोप नहीं करना चाहिये। मन्देह (बुद्धि के मन्द करने वाले) राक्षसों के नाश हेतु अर्घ समर्पण करे। सन्ध्या की सिद्धि जल फाँकने से नहीं होती है जप से ही सिद्धि होती है अतः उसे कालातीत कभी न करे क्योंकि काल के बीतने से वह अफल (बिना फल वाली) हो जाती है जसे वन्ध्या (बांझ) स्त्री से सहगमन करने से पुत्र की प्राप्ति नहीं होती और वह व्यर्थ है इसी प्रकार काल लोप करने वाले की उपासना फल रहित है। असली साङ्गोपाङ्ग सन्ध्या जप के साथ ही सिद्धिकारक है।

एवंविधास्तु ये सन्ध्यामुपतिष्ठन्ति ते द्विजाः ।
नोदकस्य तु विक्षेपात्सन्ध्या भवति सिद्धिदा ॥

बृहद्योगियाज्ञवल्क्यस्मृति १०।१८

तीनों काल का समय

उपर्युक्त कथन का अभिप्राय है कि तीनों काल का निश्चित समय इस प्रकार है। तारा रहते हुए सन्ध्यामें बठे आरम्भसे त्व यज्ञस्त्वं० तक पाठ करे गायत्री एवं अपने २ इष्टदेवका जप सूर्यनारायणके उदय होने पर्यन्त

करे जब वह उदयहों तब अर्घ्य दें बाकी सन्ध्या समाप्तकर समय हो तो और जप करे नहीं तो अपने व्यवहार में लग जाय। मध्याह्न में जब ऊर्ध्वं मुखी सूर्य की किरणें हों तब यथाविधि उपासना (जप) करें फिर किरणें अधोमुखी होने से सूर्य को अर्घ्य दे वें। सायंकाल सर्य रहते हुए अर्घ्य देवें और बाद में उपासना (जप) में लग जावें और तारागण के उदय होने से अपने अपने काम में लग जावें।

सन्ध्या क्या है ?

सारे संसार के स्थावर जङ्गम प्राणियों का सम्बन्ध सौरमण्डल से ही है "एताभ्यां पुष्पवद्भ्यां च धारितं जनितं जगत्"। सौर मण्डल में नक्षत्र, ग्रह, तारा और चन्द्र सूर्य सभी का प्रतिनिधित्व है। सौर मण्डल की प्रधानता से त्रिदेव, साध्य, विश्वदेव, सप्तर्षि, मरुद्गण तैंतीस कोटी देवगण सभी उनमें समाविष्ट होते हैं। तपोनिधि सूर्य और कलानिधि चन्द्र सृष्टि के नियंत्रणकर्त्ता हैं; इनके द्वारा सभी सृष्टिके प्राणीमात्र का जन्म, पालन और संहार चलता है। सारी ब्रह्माण्ड की अचिन्त्य शक्तियां ही सौर मण्डलमें व्याप्त हैं। सूर्यनारायण की उपासनासे सभी मानव देहधारी उस सर्वतः तेजोमय प्रभुका ध्यानकर परम्परा से उस सर्व समर्थता को प्राप्त कर सूर्य के समान तेजस्वी अपने में दिव्य गुणोंको पाने से प्राणी मात्र का कल्याण कर सफल जन्मा बन जाते हैं। सन्ध्या उपासनामें जो सम्पूर्ण देवगण की शक्ति सूर्य में प्रतिनिधि रूप से हैं, वह आ जाती है। "भास्वती-श्वरशक्तिः सा सन्ध्येत्यभिहिता बुधैः"। भास्वती दिव्य तेजः प्रकाश वाली ईश्वरी शक्ति ही सन्ध्या है, इसलिये सन्ध्या का सम्बन्ध बुद्धिसे है, बुद्धि से ही सृष्टि है बुद्धि की वृद्धि निश्चय ही करनी होगी। उसीसे ही सबका कल्याण है।

आराधना से लाभ

सन्ध्या करने से हमें जैसी शक्ति सूर्यनारायण की है वैसी ही उपासना से मिलती है। वह उनके उदय और अस्त तथा मध्याह्न के समय उपासना द्वारा प्राप्त होती है। यदि सन्ध्या नहीं करेंगे तो हम भास्वतीश्वरशक्ति को सञ्चय न कर सकेंगे उससे वञ्चित हो जायँगे। इसीलिये 'सूतके मृतकेवाऽपि सन्ध्या कर्म न सन्त्यजेत्" वशिष्ठ० सूतक और मृतक में भी सन्ध्या नित्य-कर्म को न छोड़े। अशक्तावस्था में भी भगवदुपासना विहित है। इसलिये सन्ध्या तीनों काल में जीवन पर्यन्त करनी है। बद्धिमन्द होने का दोष हम म न आ जावे इस वास्ते बालक, बूढ़े, स्त्री पुरुष सभी को सूर्यनारायग की आराधना करनी है। वेद में कहा है कि जिस समय सन्धिवेला आती है, उस समय कुछ विश्राम का अवसर होने से कुछ बुरी भावनायें मन में आती हैं। छै प्रधान असुर हैं, दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, पारुष्य और अज्ञान, इन्हीं से आसुरी सम्पदायें बनती हैं। उन्हीं बेलाओं में सूय सुरश्मि सुबुद्धि को साथ में लिये हुए हमें प्रभावित करती है। वेद मन्त्रों के अनुसार ध्यानसे हम सुबुद्धि को बनाई रक्खें तो आसुरी सम्पदाका नाश सुनिश्चित है। देवासुर संग्राम उस समय उपस्थित होता है देवगण का पक्ष लेने को हमें आराधना अवश्य करनी चाहिये।

सर्वेषामपि लोकानां सवषां नाकिनामपि।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां मखानां बहुना किमु।
सर्वकृत्यं सन्ध्ययैव सम्यगेव सुसाधितम्॥
सन्ध्याभावे सर्वलोकविनाशः सद्य एव वै" कण्व० १६८।१६६।

सम्पूर्ण लोकों, सभी देवगणों और ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश त्रिदेवों के निमित्त यज्ञों का फल सन्ध्या में आता है। सन्ध्या न करने से सम्पूर्ण

लोकों का विनाश सद्यः होता है। शास्त्र में सन्ध्या न करने वाले को ब्रह्मघाती और आत्मघाती कहा है।

समीचीनमहासन्ध्यारहितस्य दुरात्मनः।
नामानि तारकाणि स्युः प्रजप्तानि जगत्पतेः।
वेदाक्षरैकशून्यस्य पुराणान्तर्गताः पराः।
श्लोकाः केचन सम्प्रोक्ताः स्नानसन्ध्यादिकर्मसु॥
कण्व० २६४।

जो व्यक्ति अच्छी प्रकार सन्ध्या नहीं करना जानता वही उसकी आत्मा में त्रुटि है। उसके लिये सभी आगम निगम पुराणों में प्रतिपादित जगत् के स्वामी विष्णु के नाम ही तारक हैं। तीन सन्ध्याओं में भगवन्नाम को जपने से ही वह सुष्ठु धर्मात्मा बन जाता है।

न सन्ध्याविघ्नकरणादन्यत्पापं तु विद्यते
ब्राह्मणस्य क्षत्रियादेरपि शूद्रस्य वा पुनः॥
कण्व० २८६॥

इस संसार में सन्ध्या न करने से बड़ा पाप नहीं, भले ही वह ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय आदि हो या शूद्र भी क्यों न हो उपासना सबको ही करनी चाहिये अपने इष्टदेव की। सन्ध्या आराधना का उल्लङ्घन कोई भी नहीं कर सकता।

तीनों टाइम जब सूर्य में परिवर्तन होता है उस समय वायु में विकृति आती है उसी को शास्त्रोंमें "मन्देहाः" नाम वाले राक्षस कहा है। निश्चय ही वायु के साथ सभी प्राणियों की बुद्धि में विकृति आती है। अतः बुद्धि में विकृति न आने देने को सन्ध्याओं का समय सूर्याराधना भगवन्नाम संकीर्तन और जप ध्यान में लगाना चाहिये।

यह शरीर तो भगवान् का है! इसकी साथकता सृष्टि के परम माता-

पिता सौरमण्डल स्थित प्रधान अधिदेवता सूर्यनारायण को ईश्वराराधन से और जन्म देनेवाले माता पिता को उनके रहते आज्ञाकारी बन और बाद में उन्हें तर्पण और श्राद्धादिसे प्रीणन करनेसे है। यदि अपने परम आराध्य जगत्पिता प्रत्यक्ष देव सूर्य की आराधना में और जन्म देने वाले माता पिता के पितृ तर्पण और श्राद्ध आदि में अपना निश्चित समय नहीं लगायेंगे तो हमारा शरीर श्वांस की धौंकनी के समान प्राण का सञ्चार करता है हमारा जीवन व्यर्थ है।

आसुरी सम्पत्ति का हमारे ऊपर तीनों समय बुरा प्रभाव पड़ता है उसे नहीं आने दें और भगवन्नाम और प्रत्यक्ष देव सूर्य की आराधना में लगें तो हम उनके आक्रमण से बचने की बुद्धिमानी करेंगे।

सभी सन्ध्या वेला में ३ घड़ी समय लगाने से उत्तम है इसका नियमित अवकांश रखते हुए जो महानुभाव ११ माला गायत्री और भगवन्नाम का जप करें तो अवश्य ही लाभकारी है। यदि आवश्यकता के कारण समय न मिल सके तो तीनों समय दो दो घड़ी निश्चय ही जप करे वह मध्यम है। फिर भी क्रम को छोड़े नहीं। एक एक घड़ी का समय देना तो अधम कहा गया है। इसलिये सभी आबाल वृद्ध वनिता तीनों टाइम की अपने अपने विधिके हिसाबसे भगवन्नामकी उपासना निश्चय हीकरें और जीवन पर्यन्त करें चाहे वे कोई भी अवस्थामें हो। आराधना करना ही उसका तीन तीन घड़ी श्रेष्ठ है कम समय लगायेंगे तो उस लाभ से अधिक वंचित रहेंगे इस-लिये पूरा समय देकर जीवन को सार्थक बनायें ।

इस क्रम को बिना नाघा करे इस भगवत्प्रार्थना को नियमित समय पर जीवनके साथ "आवश्यक" कर्म बनालें तो निश्चय ही प्रभूत फल होगा। भगवद् आराधना करने वाले को मुक्ति की प्राप्ति होगी।

अशने शयने पाने गमने चोपवेशने।

सुखे वाऽप्यथवा दुःखे राममन्त्रमनुस्मरन्
न तस्य दुःखदौर्भाग्यं नाधिव्याधिभयंभवेत् ।
आयुः श्रियं बलं चैव वर्द्धयन्ति दिनेदिने ॥
रामेति नाम्नां मुच्येत पापाद्वै दारुणादपि ।
नरकं नहि गच्छेत गतिं प्राप्नोति शाश्वतीम् ॥

व्यासजी कहते हैं कि सभी मानव मात्र इस तारक परब्रह्म "राम" को हृदय में बिठा कर (विराजमान कर) भोजन करते, सोते, जल पीते, चलते, फिरते, उठते, बैठते, सुख में अथवा दुःखमें राम इस अद्भुत महिमा सम्पन्न मन्त्र का सतत उच्चारण करें । इस प्रकार जप करनेवाले को दुःख दौर्भाग्य (विपत्ति) मन की व्यथा और रोग नहीं होते साथ ही उनकी आयु, लक्ष्मी और बल प्रतिदिन बढ़ते जाते हैं । संक्षेप में, उनकी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होती है । उन्हें शाश्वत गति मिलती है ।

स्कन्दपुराण ब्रह्मखण्ड पू० भा० धर्मा० ३४८-५०

शूद्र और नारी गण के लिये प्रणव से रहित ही भगवन्नाम तारक है । सम्पूर्ण प्रकृतिवाले लोगों के लिये भगवन्नाम ही महौषधि है । इसकी तुलना में जप, तप, शरीर को शुद्ध करनेवाले आध्यात्मिक योग विप्र सेवा, दान; विष्णु के ध्यान से होनेवाली सभी सिद्धियां अवश्य फलदायिनी होने पर भी इस 'राम' मन्त्रके जपके चमत्कारके सामने वे सब स्वयमेव ही हल्की लगती है । सभी प्रकृति वाले लोग इस राम नाम को जपें इसका जप कोटि गुणा अधिक फल देता है । "राम" यह दो अक्षर का जप सम्पूर्ण पापों को नाश करता है, चलते-फिरते उठतेः बैठते और सोते हुये भी मनुष्य "राम" के कीर्तन से संसार सागर को सफलता से पार कर अन्तमें हरि का पार्षद बन जाता है । "राम" यह दो अक्षर का मंत्र कोटि मन्त्रों से भी सौ गुणा

अधिक लाभदायक है और इसे सभी प्रकृतिवाले लोगों के लिये पाप नाशक (पाप नाश करनेवाला) कहा गया है। इसका सर्वसमय जप करना अनन्त गुणा फल देनेवाला है। चातुर्मास्यमें जप व हरिका ध्यान किया जाय तो और अधिक लाभप्रद है। भक्ति से इस तारक मन्त्र को जपने वाले लोगों को को कभी यम यातना (नरक के दुःखों) का भागी नहीं बनना पड़ता। संसार में "राम" मन्त्र से अधिक शक्तिशाली साधन और नहीं है। राम नाम के आश्रय में रहनेवालोंसे सदा सर्वदा यम यातना दूर रहती है।

विघ्न करनेवाले मृतक विग्रह (युद्धादि अनिष्ट करनेवाले कार्य) आदि जो भी दोष हैं उनका रामनाम से ही विलय हो जाता है इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये। सम्पूर्ण स्थावर और चर (जङ्गम) प्राणियों में जो अन्तरात्मा के स्वरूप से रमण करता है, उसी की "राम" संज्ञा है ।"राम" यह मन्त्रराज (मन्त्रों का राजा) हैं सारे भय और व्याधियों को जड़ मूल से मिटाने वाला है। रणक्षेत्र (युद्ध) में विजय दाता और सम्पूर्ण इष्टकार्यों का साधक है। यह इष्टकामनाओं का कल्पतरु है। इसे सम्पूर्ण मानवों के लिये ही कामना सिद्धि का दायक और सम्पर्ण तीर्थों काफलहीकहागया है। "रामचन्द्र" "राम""राम" यहीउसका शब्दकास्वरूप है; सम्पूर्ण भू-मण्डल पर यह दो अक्षरों का मन्त्रराज सब श्रेष्ठ कार्यों में सफलता देने वाला है तभी तो देवगण भी इस सिद्ध मन्त्र "राम" नाम के गुणों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते है, -इसलिये 'हे देवेशि! तू भी राम नाम का जप कीर्तन कर। जो राम नाम का जप करता है वह सब पापों से छुटकारा पा जाता है।

स्कन्दपुराण ब्रह्म० धर्मा० माहा० २४।३६।५१

भगवान् के राम, कृष्ण आदि सभी मन्त्र सिद्धि दाता है। उपनयन के अधिकारी जो हैं उनसे प्रार्थना है कि वे उपनयन का संस्कार करें और

अपने २ बालकों को यज्ञोपवीत धारण कराकर विधिके साथ सन्ध्योपासना में लगावें। जो यज्ञोपवीत न धारण करने वाले हों वह अपनी प्रिय सन्तान को भगवन्नाम लेने का व्रत धारण करावें। भगवान् के शरण होकर अहर्निश उन्हें हृदय में धारण करना अवश्य लाभदायक है परन्तु तीनों काल की सन्धि में बुद्धि को मन्द करनेवाले तत्वों से बचने के लिये सूर्यनारायण प्रत्यक्ष देव की आराधना के लिये सन्ध्या वन्दन शास्त्र विहित है इसे जो यज्ञोपवीती हों वह विधिपूर्वक करें और अपनी अपनी शाखा के अनुसार गायत्री मन्त्र से भगवान् को अर्घ्य दें जो अनुपवीती हैं वे पुराणों के वर्णित श्लोक से सूर्य को अर्घ्य दें।

सन्ध्या काल में आराधना ही प्रमुख है

सन्ध्या की तीनों वेलाओं में ५ कार्य सदा वर्जित हैं:—

स्वप्नमध्ययनं यानमुच्चारं भोजनं गतिम्।
उभयोः सन्ध्ययोर्नित्यं मध्याह्ने तु विवर्जयेत्॥

कूर्म० उत्तरार्द्ध १६।७४

सोना, अध्ययन (पढ़ना) यान (सवारी से जाना) मल-मूत्र और मैथुन करना, भोजन करना और चलना, दोनों सन्ध्या वेला और मध्याह्न में वर्जित है।

चत्वारि खलु कर्माणि सन्ध्याकाले विवर्जयेत्।
आहारं मैथुनं निद्रां स्वाध्यायञ्च चतुर्थकम्॥
आहाराज्जायते व्याधिः क्रूरगर्भश्च मैथुने।
निद्रा श्रियो निवर्तन्ते स्वाध्याये मरणं ध्रुवम्॥

यम स्मृति ७६।७८

उपर्युक्त तीनों सन्ध्या काल में आहार, मैथुन निद्रा और स्वाध्याय

और सभी संसारिक कार्य वर्जित हैं। भोजन से व्याधि होती हैं मैथुन से क्रूर गर्भ, नींद लेने, (सोने) से लक्ष्मी चली जाती है और स्वाध्याय से मरण निश्चित है।

उपर्युक्त विवेचन से यह ध्रुव निश्चित हो गया कि भगवन्नाम की शरण में रहना सदा ही इष्ट और फलदायक है। इससे अन्य सांसारिक कार्य में न लग कर उस समय भगवद्‌आराधना ही लाभ-दायक है।

त्रिकाल सन्ध्या व गायत्री का महत्व

जितने भी पृथ्वी में विकर्मस्थ लोग हैं उन्हें पवित्र करने के लिये ब्रह्मा ने सृष्टि में सन्ध्या बनाई। जो सन्ध्या है उसकी प्रतिष्ठा गायत्री में तीन रूप से है सन्ध्या की उपासना करने वालों ने भगवान् विष्णु की उपासना कर ली।

सन्ध्या ह्युपासिता येन तेन विष्णुरुपासितः।

(विश्वा० स्मृति०)

ॐ कार से युक्त गायत्री से अभिमन्त्रित जलरूपी वज्र से वे सभी दैत्य नष्ट हो जाते हैं। यह रहस्य जानकर जो मानव मात्र खूब मनोयोग पूर्वक सूर्य की आराधना में लगते हैं वे दीर्घ आयु को पाते हैं सभी पापोंसे उनकी मुक्ति (छुटकारा) हो जाती है। पूर्वसंध्या (प्रातःकाल की) गायत्री है। सावित्री मध्याह्न काल की है। जो पश्चिम संध्या (सायंकाल की) है वह सावित्री है। गायत्री का रंग लाल है। सावित्री श्वेतपूर्ण (सफेद रंग) है और सरस्वती कृष्णवर्ण (काले रंगवाली) है दोनों संध्याओं में ब्रह्मा, विष्णु और महेश का सङ्गम होता है और मध्याह्न काल की संध्या में सम्पूर्ण देवगण का समागम होता है। देवगण की संधि होने से इस समय का नाम संध्या यथार्थ है।

बृहद्योगियाज्ञवल्क्य० ६।६—१५-१६

अर्घ्य का रहस्य

अर्घ्य के तीन उद्देश्य हैं। (१) सूर्य को देखकर अर्घ्य देते हुए हम उनके आत्मबल की पूजा करते हैं। (२) आसुरी सम्पदा का नाश हो जाता है। (३) सूर्यके द्वारा सञ्चालित हमारी बुद्धिका यह अर्पण है। प्रातः सायं तीन तीन अर्घ्य और मध्याह्न में एकअर्घ्य इसलिये रखा गया कि वह कर्म जीवन के मध्य में है और हमारे कर्म पर सूर्य का प्रभाव है इसलिये उन्हें स्मरण कर अर्घ्य देते हैं इतना ही पर्याप्त है।

जो संध्या है वह सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति करनेवाली माया से अतीत कलाओं से ऊपर निष्कल सर्वैश्वर्यसम्पन्न तीनों तत्वों को ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर (रज, सत्त्व-तम). की उद्भव (उत्पन्न) करनेवाली शक्ति है वही परमाराध्या है।

सूर्य मण्डल में स्थित सावित्री का ध्यान कर पूर्व की ओर मुख कर सतत विप्र संध्योपासना और सावित्री का जप करें।

जो व्यक्ति संध्याहीन हैं वह वास्तव में अपवित्र हैं और किसी भी देव, 'ऋषि तथा पितरेश्वर सम्बन्धी कर्म करने के अधिकारी नहीं हैं' वह बिना संध्या प्रार्थना किये यदि कोई कार्य करते हैं तो उन्हें विधिवत् फल प्राप्त नहीं होगा।

प्राचीन काल में सभी भगवद्भक्ति में लीन, शांत, वेद के धुरन्धर विद्वान् लोग विधिपूर्वक संध्या, प्रार्थना कर अतीव विलक्षण चमत्कार को प्राप्त कर धन्य हुए। संध्या, प्रार्थना ही विजय, श्री, विभूति ऐश्वर्य का स्थान है। इसलिये सर्व प्रकार से यत्नपूर्वक सन्ध्योपासना करना चाहिये। इस आराधना से साक्षात् योगशरीर भगवान् विष्णु की पूजा की जाती है। प्रति दिन विद्वान् गायत्री मंत्र की ११ माला अवश्य पूर्व की ओर मुख करके जपे। अपने इष्टदेव सूर्यनारायण के उदय होते होते उनकी स्तुति के

ऋग्वेद तथा सामवेद के मन्त्रों से ध्यानपर्वक आराधना करे। भगवान् देव-देव महादेव महायोग सूर्यनारायण दिवाकर का उपस्थान कर उन्हें शिर नवाकर उन्हीं मन्त्रों से दण्डवत् प्रणाम करे।

[कू०पु०, ब्रा०स० उत्त० १८।२६-३४]

अनूद्की सन्ध्या

कोई कारणवश जलकी व्यवस्था न हो सके तो भी काल लोप नहीं करना चाहिये ऐसी व्यवस्था में अनूदकी संध्या का विधान शास्त्रों में वर्णित है।

मूलतः प्रधान पुरुषातीत के संधि होने पर जो सत्त्वगुणबोधिनी सन्धि है, वह सन्ध्या कहलाती है। जो अनूदकी सन्ध्या है वह लेप स्नेह से विवर्जित, सम्पूर्ण भूतों की सन्धिनी, शोधन करनेवाली और भवनाश करनेवाली है। हृदयरूपी आकाश में स्थित सूक्ष्म रूप से सूर्य की रश्मि की रेखा के प्रतीकात्मक चन्द्र, सूर्य एवं अग्नि के तेज से संस्कृत अण्ड (शरीर) को भेदन कर जो उत्तम ज्योतिरूप में निकलती हुई दीर्घ घंटा के शब्द के समान मन से आत्मतत्त्व की अनुभूति का हृदय में ध्यान करना ही अनूदकी सन्ध्या है। सन्धि वेला में ही सन्ध्योपासन करना चाहिये न तो सूर्य के अस्त होने पर और न सूर्य के उदय होने पर करे समय पर ही यथाविधि करें।

[वृहद्योगियाज्ञवल्क्य० ६।२०-२५]

जप की विलक्षणता

सन्ध्या आराधना की सफलता ध्यान के सहित जप करने से है। अग्नि-पुराण में कहा है—

जापध्यानादियुक्तस्य विष्णुः शीघ्रं प्रसीदति।
जपयज्ञस्य वै यज्ञाः कलां नार्हन्ति षोडशीम॥

जपिनं नोपसर्पन्ति व्याधयश्चाधयो ग्रहाः ।
भक्तिर्मुक्तिर्मृत्युजयो जपेन प्राप्नुयात् फलम् ।।
३७४।३३-३४

जप ध्यान और चिन्तन करनेवाले पर भगवान् विष्णु शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। जप यज्ञ ही सब यज्ञों में श्रेष्ठ हैं और यज्ञ इसके चमत्कार की १६वीं कला की भी बराबरी नहीं कर सकते। जप करनेवाले को शरीर के रोग और मानसिक चिन्तायें कभी नहीं सतातीं। जप से भक्ति-मुक्ति और लक्ष्मी भगवान्में भक्ति-मुक्ति व ऐश्वर्य और मृत्यु को जीतने की सामर्थ्य का फल मिलता है। इस वचन से यह स्पष्ट है कि नित्य भगवान् की प्रीति के लिये जप करने वाले की अकाल मृत्यु कभी नहीं हो सकती है।

ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः,
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
जप्यैनेव हि संसिध्येत् ब्राह्मणो नाऽत्र संशयः,
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते।।

सम्पूर्ण विधि यज्ञवाले चार पाकयज्ञ जप,-यज्ञ की सोलहवीं कला की भी बराबरी नहीं कर सकते। जप से ब्राह्मण निश्चय ही सिद्धि पाता है और कुछ भी वह न करे। सर्य की आराधना करनेवाला ही वास्तव में श्रेष्ठ मैत्र ब्राह्मण है।

जप करता हुआ न हिले डुले, न हंसे, न अपने आजू-बाजू बगल की ओर झांके, न बात करे, न सहारा लें, न शिर पर कोई वस्त्र डाले, न पैर से पैर दबावे, न एक हाथ को दूसरे पर रक्खे; उस समय ध्यान में मन विचलित न करे और न जोर २ से सुनाकर जपे।

छिपे छिपे गुप्तदान करना, बिना किसी अहंकार के ज्ञान की प्राप्ति करना, और गुप्त रूप से जप करना इनका फल अनन्त गुणित होता है।

मानस, उपांशु, और अभिचारिक ये तीन प्रकार के जप हैं।

'मानसः शान्तिकजपः उपांशुः पौष्टिकः स्मृतः।
सशब्दश्चाभिचारश्च जपस्तु त्रिविधः स्मृतः॥
तिष्ठंश्चेद्वीक्ष्यमाणोऽर्कमासीनः प्राङ्मुखोजपेत्।

वृहद्योगियाज्ञवल्क्य० ७।१३४-१३५

शान्तिक जप मानस है, उपांशु पौष्टिक है और मुह से शब्द का उच्चारण होनेवाला अभिचार जप है ये तीन प्रकार के जप हैं। सदा ही पद्मासन से स्वस्थ होकर सूर्य का ध्यान करते हुए पूर्वमुख ही जप करें।

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टोदशभिर्गुणैः।
उपांशुःस्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः॥

बृह० याज्ञ० ७।१३६

विधियज्ञ से जपयज्ञ दशगुणा विशिष्ट फल देनेवाला है, उपांशु सौ गुणा और मानस जप हजार गुना अधिक फल देनेवाला है।

जप एव हि कर्तव्य एकाग्रमनसा सदा। ७।१३९

जप को सदा एकाग्र मन से ही करना। जप के समय न जीभ को और न होठों को हिलावे, न शिर और गले को हिलने दे, और न दाँतों को दिखावे। गुप्तरूप से ही जप करना उचित है—

ध्यायेच्च मनसा मन्त्रं जिह्वोष्ठौ न विचालयेत्।
न कम्पयेच्छिरोग्रीवं दन्तान्नैव प्रकाशयेत्॥
यक्षराक्षसभूतानि सिद्धविद्याधरोगणाः।
हरन्ति प्रसभं यस्मात्तस्माद् गुप्तं समाचरेत्॥

कूर्मपुराण उत्तरार्द्ध १६ से १८ व बृ० या० ७।१४०-१४१

गृह में, देवाराधना के स्थान पर, जल के निकट, अग्निहोत्र (यज्ञशाला)

स्थान में, देवालय में, पुण्यतीर्थ में, गायों के गुवाड़ में, सिद्धिक्षेत्र में जप करना श्रेयस्कर है। घर में जप का एक गुना फल, नदी के तट पर दुगुना, गायों के स्थान पर दशगुना, यज्ञशाला में सौ गुना, सिद्धिक्षेत्रों और तीर्थों व देवता की सन्निधि में हजार गुणा और विष्णु भगवान की सन्निधि में अनन्त गुणित फल होता है।

बृहद्योगियाज्ञवल्क्य ७।१४२-१४३

सन्ध्या से ही निश्चित समयानुवर्तिता

संध्या में निश्चित समय का पालन करना बहुत महत्त्वपूर्ण है। आज के इस भू भौतिकी युग में सभी वैज्ञानिक, यान्त्रिक और आर्थिक सफलता पानेवाले पाश्चात्य देशवासियों ने समय पर काम करने की प्रवृत्ति के द्वारा ही सर्वत्र अपनी विजय वैजयन्ती फहराई। उन्होने हमारे ऋषियों के संध्या बन्दन के निश्चित समय पालन का ही तो एक देशीय अनुकरण किया है। देखिये, हमारे ऋषि महर्षियों ने किस प्रकार संध्या को हमारे जीवन का अभिन्न अङ्ग बनाकर सभी ओर से हमें विजयी बनाया था। सूर्य को समय पर अर्घ्य देने के लिये प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में सूर्योदय के एक घंटा पूर्व हमें उठना होगा। रात्रि में निद्रा के समय जो श्वांस की गति द्रुतगति में बदल जाती है उसका शमन सन्ध्या के प्राणायाम की क्रिया से पूर्वावस्था स्वस्थ बना लिया जाता है और सर्वतेजोमय सूर्य की आराधनाकर अचिन्त्य शक्ति वाली क्रियाशीलता की प्राप्ति की जाती है। फिर पाँच घंटे सांसारिक कार्यों में लगते हैं कुछ थकावट आती है उसे मध्याह्न सन्ध्या समय में आराधना द्वारा दूर कर सर्वत्र प्रसृत तेजोनिधान सूर्य देव का गुणानुवाद गाकर फिर स्वस्थता प्राप्त कर ली जाती है। फिर ५-६ घंटे सांसारिक व्यवहार में लगाकर सायं काल में सन्ध्योपासन कर आध्यात्मिक शक्ति का संचय किया जाता है। इससे रात्रि में भगवत्सन्निधि पूर्वक निद्रा द्वारा

सुस्वप्न होता है। जीवन को नियत निर्जीव यन्त्र ही नहीं बल्कि सजीव आध्यात्मिक साधन से जीने की कला समय के सार्वजनीन नियम के साथ ऋषियों ने हमें दी। समय का सन्ध्या साथ चोली दामन का सम्बन्ध जोड़कर उन पुण्यात्माओं ने मानव जीवन के आध्यात्मिक स्तर को ऊँचा बना हमें समय से प्रेरणा लेकर आगे बढ़ने की कुञ्जी दी। यह उन्हीं की देन थी। समय को कभी नहीं चूकना चाहिये। इसमें न अकाल मृत्यु होगी और न मनुष्य योनि से कभी हाथ धोना पड़ेगा। समय पर हम चलते थे तभी हम सर्व प्रकारेण विजयी थे आज समय की अवहेलना कर हम वास्तव में अधोगति की ओर चले गये हैं। खेद है सन्ध्या के काल लोप के कारण ही यह सब पतन हुआ है। हमारे सुरक्षित उस महान् गुणों की कोषराशि को हमें अब सम्हाल कर आगे बढ़ाना है।

स्नान की महत्ता

घर में रहते हुए सन्ध्या के अधिकारी को तीनों काल में स्नान करना चाहिये। काल दोष से शरीर की असमर्थता के कारण स्नान न कर सके तो उसके लिये ऋषियों की आज्ञा है कि मन्त्रों से मार्जन करके सूर्य के अभिमुख हो (पूर्व दिशा में मुंह कर) सन्ध्या करे। जिस किसी भी अवस्था में हो प्रार्थना एवं भगवन्नाम का त्याग कभी न करे। स्नान का विवरण विश्वामित्र स्मृति में इस तरह बतलाया है—

शिरः स्नानं गलस्नानं कटिस्नानं तथैव च।
आजानुपादपर्यन्तं मन्त्रस्नानं चतुर्विधम्॥

शिर का स्नान, गले का स्नान, कटिप्रदेश का स्नान, जानुप्रदेश से पाद पर्यन्त स्नान इन चारों प्रकार के स्नान के साथ पाँचवाँ मन्त्र स्नान विधि विहित है। कूर्मपुराण में भी लिखा है:—

शरीर की शक्ति न होने पर ब्राह्म; आग्नेय,वायव्य, वारुण और यौगिक स्नान संक्षेपतया विहित है। ब्राह्मस्नान में जलबिन्दुओं से कुशाओं के सहित वेद मन्त्रों से सारे शरीर पर मार्जन किया जाता है। आग्नेय स्नानभस्म को शिर से पैरोंतक देह का धूलन (रमाना) है। गौवें जहां चले वहाँ की धूलि रजःकणों से शरीर पवित्र करना उत्तम वायव्य स्नान है। सूर्य की किरणों का सेवन दिव्यस्नान कहलाता है। जल में प्रवेश कर स्नान करना वारुण स्नान है। यौगिकस्नान योगी महानुभावों द्वारा योगाभ्यास में विश्व ब्रह्माण्ड आदि का विशेष चिन्तन है यह आत्मतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है और ब्रह्मवेत्ता महर्षियों द्वारा सेवित है। आत्मशुद्धि के लिये सन्ध्या प्रार्थना के समान ही मनुष्यमात्र के लिये मन की शुद्धि के लिये नित्य स्नान अवश्य करना चाहिये। [कूर्मपुराण ब्राह्मी० सं० उ० १८।११-१५]

किसी भी अवस्था में सन्ध्या छोड़ना इष्ट नहीं यह तो भगवान् सूर्य-नारायण से अपने में जो रजोगुण एवं तमोगुण के परमाणुओं का दिन रात में प्रवेश होता रहता है उन्हें पाप रूप से बाहर निकालकर पवित्र दिव्य-ज्योति का ध्यान कर सद्गुणों की प्राप्ति के लिये परमपिता प्रत्यक्षदेव सूर्य से मंगनी करना है !

साथ ही यह भी बतला देना आवश्यक होगा कि जो अधिकारी हैं अर्थात् (जिनके माता-पिता जीवित न हो) वे प्रातः सन्ध्या के समय तर्पण को अवश्य करें क्योंकि इससे देव मनुष्य एवं पितर सभी तृप्त हो आशीर्वाद प्रदान करते हैं।

यह सन्ध्या सभी प्राणीमात्र को आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, शारीरिक बल आध्यात्मिक विकास एवं प्रभूत धन-धान्यादि तथा भक्ति व मुक्ति को देने वाली है अर्थात् उन्हें कोई भी वस्तु की कमी नहीं रहती।

अन्त में मेरी सभी सम्मान्य महानुभावों से विनम्र प्रार्थना है कि

त्रिकालसन्ध्या के समय भावना पवित्र रखते हुए भगवन्नाम जप में तथा प्रार्थना में सतत लगे रहें एवं प्रत्येक प्राणीमात्र को इसकी ओर लगा दें इसी में कल्याण निहित है ।

पुत्रान् भृत्यान् कलत्रं च भक्तमाश्रितमेव च ।
नित्यं कुर्यादुपायेन भगवद्भक्तिभावितान् ॥ शाण्डिल्य स्मृति

व्यायाम

"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"

धर्म की साधना के लिये शरीर का सब प्रकारसे नीरोग रहना आवश्यक है। "धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्" सभी पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ काम और मोक्ष) के साधन के लिये भी आरोग्य को उत्तम मूल कहा गया है। इसलिये प्रतिदिन शरीर को बलवान् बनाने के लिये व्यायाम करना चाहिये। यह शक्ति के अनुसार शुद्ध और खुले मैदान में ही करना इष्ट है। इससे शरीर के सभी स्नायुओं-अङ्गों का यथायोग्य विकास होता है जो कुछ अजीर्ण, वायु का कुपित होना और दोषों का बनना है वह शमन हो जाता है। सारे शरीर में स्फूर्ति, बल वीर्य एवं कांति बढ़ती है और जठराग्नि तीव्र होती है। संक्षेप में, बाहरी अंगों की पुष्टि से ही मनोबल और आत्मबल बढ़ता है। इससे जीवन में सदा ही अपने दैनिक आचरण में करना अपेक्षित है क्योंकि व्यायाम से पुष्ट शरीर वाले पुरुष का बुद्धि तेज, यश और बल बढ़ता है इसलिये व्यायाम निश्चित समय पर करें। उपनिषदों में व्यायाम को आत्मबल की पहली सीढ़ी बताया है।

व्यायामपुष्टगात्रस्य बुद्धिस्तेजोयशो बलम् ।
प्रवद्धंन्ते मनुष्यस्य तस्माद् व्यायाममाचरेत् ॥

प्रकृति के नियमों के परित्याग का फल

प्रकृति नदी के लीला विस्तार में नट नागर भगवान् सर्वान्तयामी द्वारा क्या क्या सुन्दर रचनायें की गई हैं इसे हम प्रतिदिननानापशु-पक्षी, वन, उपवन, वाटिकाओं में देखते हैं, एक छोटे से वट के बीज से विशाल वट का वृक्ष वन जाना, मोर की सुन्दर सतरंगी पंखों की चित्र विचित्र रचना और शुक, पिक, सारिका एवं जलचर, नभचर और गगनचर जीवजन्तुओं का क्रमिक विकास और सौन्दर्योन्मुख उनका विलास उस बीज की ही सतत रक्षा का प्रभावपूर्ण फल है। दाडिम के फल का नियत क्रम से एक से ही शतशः दानों का बन्द घेरे में होना उस वीज की अद्भुत विलक्षणता ही उस चतुर विश्व रचयिता की निसर्गजात क्षमता की परिचायक है। अस्तु

सृष्टि बीज की है। जैसी सुन्दरता एवं सुरक्षा से बीज का संरक्षण किया जायगा उसी के अनुसार मनुष्य शरीर, पौधा, वनस्पति और अन्यान्य जन्तु संसार का विकास होगा यह ध्रुव सत्य है। सन्यास और वानप्रस्थ बीज के परिपक्व करने की अवस्था है।

खेतों में उगी कृषि के पौधों में से अच्छी जाति और किस्मके बीजों को प्राप्त करने के लिये किसान बीज को परिपक्व करता है उस तैयार किये बीज को आनेवाली कृषि के लिये सुरक्षित कर लेता है। यही बीज रक्षा मनुष्य जीवन पर अक्षरशः लागू है। वृद्धावस्था में भगवन्नाम, शास्त्रों का पूर्ण अध्ययन, मनन और चिन्तन कर अपने मन, बुद्धि और आत्मा को पूर्णरूप से "वासुदेवः सर्वमिति" का आदर्श रख ब्रह्म साक्षात्कार द्वारा आगे के जन्म के लियें बीज की रक्षा आवश्यक है। इस मानव शरीर का अवयव संस्थान चाहे वह बड़े से बड़ा या छोटे से छोटा हो सब वहुत ही काम का है।

इसमें कोई अंग को आपरेशन करवा के निकलवा देने से जन्म जन्मान्तरों में भी बीज की शक्ति की रक्षा में पूर्णता की कमी बनी रहने से वह अंग जिसका आपरेशन हुआ है बराबर कमजोर बना रहेगा यह भय होगा। आजकल चलते चलते जो लोग अपेण्डाइसिटीज, टौन्सिल और पुंस्त्व-हीनता तथा स्त्री प्रजनन यन्त्र (बच्चादानी) का आपरेशन करवाकर जो पूर्णांग को विकल करवाते हैं वह सब भविष्य में जन्म जन्मों तक उन आपरेशन हुए अंगों की विकलता में सहायक होगा। इसलिये पाठकगण मेरी विनम्र प्रार्थना को भावी बीज रक्षा की दृष्टि और पूर्णांगता की प्राप्ति के रूप को ध्यान में रखकर आपरेशन आदि में सावधानी पूर्वक अनावश्यक रूप से अंग विकलता न होने दें। अब रह गया विशेष सन्तान होने का भय। सो तो ब्रह्मचर्य और संयम द्वारा भगवच्चिन्तन में सद्गृहस्थ वृन्द अधिक समय लगाकर अधिक जनसंख्या पर आत्मिक नियन्त्रण ज्ञान के सहित रक्खें इससे ही हमारा विशेष कल्याण होगा।

सर्व-साधारण प्रार्थना

श्री जगदीश्वर को सादर भक्तिपूर्वक नमस्कार कर सूर्य भगवान् सात छन्द रूपी अपने अश्वों के रथ पर आरूढ़ अन्तरिक्ष स्थित सभी ज्ञान पुञ्ज के प्रकाश नक्षत्र मण्डलस्थ सप्तऋषि गण एवं विश्व हितैषी सभी प्रभु की दिव्य विभूतियों का स्मरण करते हुए परम माता-पिता, धाता-विधाता अनन्तानन्त दिव्य तेजो विभूतियों के अधिपति तपोनिधि सूर्य और कलानिधि चन्द्र की प्रकाशमयी मूर्ति का हृदय में ध्यान करे।

सम्पूर्ण विश्व में अणुपरमाणु का उत्पत्तिसे विलय पर्यन्त सूर्य(महेश्वर) ही नियामक हैं। अतः सूर्य की साक्षी से सन्ध्या प्रार्थना करने का मन में दिव्य संकल्प करें। सन्ध्या की इस प्रार्थना में परम माता-पिता अखण्ड

ज्योतिः स्वरूप भगवान् सूर्यनारायण से सभी दिव्यगुणों को हममें आधान करने की भावभीनी प्रार्थना है ।

१–पृथ्वी की प्रार्थना

हे पृथ्वी आप कामधेनु हैं, आप लक्ष्मी हैं, आप जगद्धात्री, चैतन्यरूपा मूल प्रकृति ईश्वरी हैं । आप मातृरूपा, प्रकृतिरूपा गायत्रीरूपा, अग्निरूपा और शक्तिरूपा हैं । सोमरूपा एवं गन्धवती आपही हैं । शीलवती आप हैं । संसार को मनोवाञ्छित फल देकर भवभय हरनेवाली आप हैं । आप विष्णु पालिता हैं वैष्णवी हैं । भगवान विष्णु आपके अधिष्ठात्री देवता हैं आप साक्षात् विष्णुरूपा हैं इसलिये हे भगवान् विष्णो आप मेरी सदा ही रक्षा करें ।

हे भगवान् विष्णो आपके सत्सङ्कल्प से यह सृष्टि है । मेरे में सदैव ही शुभकार्यों के सत्सङ्कल्प की भावना हो और असत् भावना से मैं दूर रहूँ । सदा के समान ही आप सृष्टि को ब्रह्मा के माध्यम से वनाते रहते हैं ।

२–प्राणवायु की प्रार्थना

हे वायु के अधिष्ठात्री देवता (ब्रह्माजी) हे परम ब्रह्मरूप ! आप प्राण स्वरूप हैं आप मेरे प्राणों की वृद्धि करें ।

हे सर्वान्तर्यामिन् आप मेरी इन्द्रियां और मन इनसे जो छै भाव विकार काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य (मत्सरता) पैदा होते हैं उनसे रात दिन मेरी रक्षा करते रहें ।

आप मेरे भोजन को सुपाच्य वना मेरे प्राणों की पुष्टि करें ।

३--जल की प्रार्थना

हे जल के अधिष्ठातृ देव महेश्वर ! आप ज्ञानस्वरूप विद्या के भण्डार हैं, इसलिये आप मुझे समस्त विद्याओं को प्रदान करें जो उतनी ही पवित्र

और निर्मल हैं जितना दिव्यजल। आपके डमरू से सम्पूर्ण विद्यायें निकली हैं और धनुष से पुराण विद्या का आविर्भाव हुआ है। आप मेरे में श्रुति, स्मृति-पुराणों का ऐश्वर्य पूर्ण ज्ञान भर दीजिये जिससे मैं उन्नत बनूं। हे नटराज ! आपके नृत्य से नाना रागरागिनियां उत्पन्न हुई हैं आप मेरे में रागरागिनियों का सञ्चार करें जिससे मेरे चित्त में प्रसन्नता रहे। संक्षेप में जल की धारा के स्वरूप आप मुझे विद्या दीजिये जिससे मैं संसार रूपी समुद्र से निर्विघ्न पार होऊं।

अघमर्षण

मेरे पापों का नाश हो और मेरी भावनायें दिव्य और पवित्र रहें।

४—तेज की प्रार्थना

हे ब्रह्मा, विष्णु और महेश आप तीनों एक ही माला की गूंथी हुई विलक्षण मणियां हैं। आप प्रजापति हैं। जगद्गुरु (विश्व के रक्षक) आप ही हैं। आप तीनों का एक रूप ही त्र्यम्बक नाम से विख्यात हैं। आपकी अद्भुत महिमा है। आपके सतत घर्षण से तेजोमयी शक्ति उत्पन्न हुई। आप ही सूय हैं, आप ही चन्द्रमा हैं, आप ही राम हैं, आप ही कृष्ण हैं, एवं समस्त दिव्य विभूतियां ही आप हैं। उसी दिव्य तेज (शक्ति) को मेरे में आधान करते रहें इससे मैं सौ वर्ष तक देखूं (दिव्यप्रभा देखता रहूँ), सौ वर्ष तक जीऊं, सौ वर्ष तक सुनूं, सौ वर्ष तक प्रवचन करूं, सौ वर्ष तक मेरी किसी भी इन्द्रियों में शिथिलता न आने पावे, मैं कभी भी अपने कर्तव्योंमें प्रमाद न करूं और किसी के सामने दीनता पूर्वक हाथ न पसारूँ साथ ही सौ वर्ष से और अधिक जीऊं तब भी मेरा जीवन क्रम ऐसा ही चलता रहे।

हे पूर्ण ब्रह्म ! आप मेरी सभी अंगप्रत्यंगों की रक्षा के लिये मुझे अक्षय कवच प्रदान करें।

५--आकाश की प्रार्थना

हे परब्रह्म ! आप आकाश में ओत-प्रोत हैं। आपकी सत्त्व रज; और तमो गुणी माया सर्वत्र व्याप्त (फैली हुई) है। आपकी त्रिगुणात्मिका माया से संसार का व्यवहार चलता है। इसलिये हे परब्रह्म आप सत्त्वगुणी माया (लक्ष्मी) मुझे प्रदान कर कृतार्थ करें जिससे हम सुचारु रूप से अपना व्यवहार चला सकें। आप तेजोमय हैं, आप पराक्रमशील हैं, आप अमृत (अजर-अमर) हैं, और ध्यानके परधाम आप ही हैं। आप देवगण के प्रिय हैं, आपके दिव्य स्वरूप का दर्शन पानेवाला मानव देवोंका आदर पात्र बन जाता है। आपके स्वरूप अनन्त हैं।

हे भगवान् आपकी प्रकाशमयी मूर्ति का मुझे अहर्निश [दिनरात] अपने हृदय में दर्शन होता रहे आपका बीजमन्त्र जो "राम" है वह मेरी जिह्वा पर सदा रहे ऐसी आप मुझे सुबुद्धि प्रदान करें।

सन्ध्याविवेचन:

(श्रीकालीप्रसाद खेतान बार-एट-ला)

भारत में शिक्षा का प्रचार बढ़ रहा है, व्यापार भी बढ़ रहा है। संसार में भारत देश को एक गण्य स्थान भी मिल गया है। परन्तु यदि इस पुण्य-भूमि में मनुष्यों के सामने हर समय नियमित रूप से उच्च आदर्श उपस्थित नहीं रहेंगे तब देश पर जीवन के अवमूल्यन का भय बना रहेगा। आदर्शों को स्मरण कराने के साधन ऐसे होने चाहिये जो स्पष्ट हों, व्यावहारिक हों और पालन करने में कष्टमय और दुरूह न हों।

अधिकारी मनुष्यों के लिये ऐसे ही साधनों की व्यवस्था संध्योपासना में की गई है। महाकाल की गति से उनका अर्थ ऐसा जटिल बना दिया है कि संध्योपासना का अर्थ ज्ञान तो दूर रहा शुद्ध अक्षर ज्ञान भी साधारण अधिकारी पुरुष के लिये अप्राप्य-सा हो गया है। पहले तो लोग मौखिक सहायता से सीखते थे। गत ५०-६० वर्षों से पुस्तकें छपने लग गयी हैं, परन्तु बहुत सी पुस्तकों में अशुद्धियां रहीं। फिर मन्त्रों के व्यवहार में शुद्ध सुललित उच्चारण का ध्यान बनता नहीं, कारण मन्त्रों का स्मरण या उच्चारण जैसे तैसे और अति शीघ्रता के साथ किया जाता है। अतः मन्त्रों के रूप और अर्थ में विकृति उपस्थित होती है। इन त्रुटियों को देखते हुए कई धर्म-प्राण सज्जनों ने पाठ शुद्धि का ध्यान रखते हुए सन्ध्या की पुस्तिकाएँ छपवाई हैं और जनता के लिये सुलभ बना दी हैं। उच्चारण-शुद्धि के लिये विज्ञान की सहायता से व्यवस्था होना सम्भव है। शुद्ध ओजस्वी सुमधुर उच्चारण करने वाले वेदपाठी प्रचुर संख्या में हैं उनसे सहायता ली जा

सकती है। अर्थ बताने वाले हैं तो पर्याप्त परन्तु उनके दिये हुए अर्थ को सरल रूप से स्पष्ट करने की आवश्यकता रहती है आधुनिक शिक्षा प्राप्त करनेवालों के लिये। नहीं तो वे सन्ध्या को अपने से परे की रहस्य वस्तु समझते हैं और उसके लाभ से वंचित रहते हैं। ऐसे वहुत से मनुष्य देखे गये हैं जिन्होंने जन्म भर सन्ध्योपासना की परन्तु उसके सार और आलोक से अनभिज्ञ रहे। अतः अर्थ की जितनी चर्चा की जाय उतना ही अन्त तक शुभ फल होने की सम्भावना रहेगी। कोई भ्रम आ भी जाय तो पण्डित समाज की कृपा से उनका पता लगेगा और उसका निवारण होगा।

प्रत्येक दिन तीन वार प्रातः, मध्याह्न और सायं में काल की सन्धि होती है, जो सम्यक् ध्यान के लिये विशेष अनुकूल होती है। यह समय ब्राह्म मुहूर्त कहलाता है उसमें प्रकृति साक्षात् ध्यान मग्न होती है, पांचों तत्वों में अर्थात् पृथ्वी, जल, वायु, तेज और आकाश के वीच आपस में भी एक प्रकार के योगायोग और सन्धि होती है। वह प्राकृतिक योगावस्था है। उसका अनुभव किसी न किसी रूप में हर महान् कलाकार और महात्मा को तो होता है उसके सौन्दय और प्रभाव के चित्रण, वर्णन, गायन, वादन, नृत्य-करण इत्यादि की चमत्कारिणी परम्पराओं से मानव जीवन धनी हैं, उस समय का विद्याभ्यास अधिक सफल होता है यह तो वहुतेरे विद्यार्थी जानते हैं। उस समय मनुष्य की वुद्धि अधिक एकाग्र होती है। योगारूढ़ होती है। "यो वुद्धेः परतस्तु सः"। वुद्धि उसका अन्दाज पाती है। वुद्धि उस अवस्था में उनको बारम्बार नमस्कार करती है। यही सच्ची सात्विकी उपासना है। वेद में कहा है—"उप त्वाग्ने दिवे दिवे; दोषावस्तर्धिया वयं, नमो भरन्त एमसि" और "भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम"। यह काम प्रत्येक दिन और बारम्बार क्यों! कारण हम पांच तत्वों की लीला में बसते हैं। उनमें विष-

मता आती रहती है। इसलिये समता लाते रहनी पड़ती है। हम एक बार तृप्त होकर भोजन कर लेते है उससे सदा के लिये निस्तार तो नहीं होता। वही शरीर के हर व्यापार का नियम है। वही मन का भी, वही बुद्धि का भी, उन सबको बारम्बार ठिकाने पर लाना पड़ता है। वियोग होते रहता है अतः योग की निरन्तर चेष्टा की आवश्यकता रहती है। जैसे हम नियमित रूप से खान पान, व्यवहार, विश्राम करने की आवश्यकता मानते हैं वैसे ही ध्यान की भी होनी चाहिये; नहीं तो श्रेष्ठ मनुष्य को भी पशु बनते देर नहीं लगती। पौधे की तरह मनुष्य भी बारम्बार मुरझाता है और अपने धर्म का पालन करके चंगा होते रहता है; पांचों तत्व बिखरे कि मरा कहा जाता है और पांचों तत्वों को ठीक सम्भालते ही पंचामृत का लाभ होता है। अर्थात् जीवन का हर वर्ग स्वच्छ निमल और पुष्ट होता है। इसी की अनुभूत संगति बैठाकर ऋषियों ने सन्ध्योपासना की विधि संसार में उपस्थित की।

उपासना की असंख्य पद्धतियां है। उनमें सन्ध्योपासना के नाम से जो विख्यात है वह श्रेष्ठ है और उच्च अधिकारियों के लिये है। इसका यह तथ्य नहीं कि ब्रह्म कुल अपनी संतानों का पक्षपात कर गये। परंच उसका असली तात्पर्य यह है कि सन्ध्योपासना के अधिकारियों पर विशेष जिम्मेवारी रही जो उसके अर्थ पर विचार करते ही स्पष्ट हो जायगी। प्रत्येक वेद के अनुसार पद्धति में कुछ भिन्नता है। उनमें यजुर्वेदीय पद्धति का अधिक प्रचार है उसी के प्रधान रूप को इस पुस्तक में छापा गया है। उसी पर कुछ विचार किया जाय।

आरम्भिक संकल्प के बाद उपासना के पांच भाग हैं। पहले पृथ्वी का फिर प्राणायाम-वायु का, फिर जल का, फिर सूर्य का अन्त में आकाश तत्त्व का। उसी के ऊँचे स्तर हैं इसी प्रकार। पथ्वी तत्व से व्यावहारिक जीवन

वायु तत्व से प्राण प्रतिष्ठा अर्थात् भौतिक, दैविक, आध्यात्मिक और उससे विद्या के पंचामृत की उपलब्धि तेज से परम पुरुष का स्वागत और स्वयं चारों पुरुषार्थ जगाना। प्रकाश तत्व का ध्यान रखते हुए जपयज्ञ करना जो यज्ञों में श्रेष्ठ है और जिसके अन्तर्गत परम आनन्द है। साधक पहले तो अपने व्यावहारिक जीवन को शुद्ध करता है फिर अपने प्राण को मजबूत करता है फिर विद्या से पूर्ण तथा लाभ पाने का प्रयत्न करता है। फिर परम पुरुषार्थी बनता है। फिर अन्तिम ध्येय को प्राप्त करता है।

यह कोई तुच्छ वस्तु मांगने की प्रार्थना नहीं है और चिल्ला कर दुनिया को या किसी बाहरी भगवान् को सुनाने की नहीं है। सन्ध्योपासना ध्यान है, योग बढ़ाने की क्रिया है। अन्तर्मुख अन्तराराम अन्तर्ज्योति अन्तर्बल अन्तरूपदर्शन की विधि है। जिसके बिना मृत्यु है। जिसे पाकर हम नव-जीवन पाते हैं। मृत्यु आठ प्रकार की होती है उसका कोई न कोई प्रकार हमें सताने के लिये सदा प्रस्तुत रहता है। इसी कारण चतुर मनुष्य उनसे बचने का ही सदा ध्यान रखता है। सन्ध्या के मन्त्र इस काम में अचूक अस्त्र हैं। अमृत भोजन हैं। वीर्य वर्द्धन हैं। समूचे जीवन में आलोक फैलाने वाले हैं और जीवात्मा भक्त का संग न छोड़नेवाले पक्के सुहृद् हैं। त्रिसंध्या यदि अनेकानेक गुणों और रूपों द्वारा हमारे लिये चिर उपयोगी और आकर्षक न हों तो भार मात्र हो जायगी। वह तो मुक्तिवाहिनी है।

प्रथम भाग पृथ्वी तत्व का है आसन का सबसे संकीर्ण अर्थ है उस स्थान और वस्त्रादि जिसपर हम बैठे हों। उससे व्यापक अर्थ है निवास-स्थान जिसे भद्रासन कहते हैं। उससे अर्थ निकला हमारा गृहस्थ जीवन। अर्थ को अधिक आगे बढ़ाइये तब आसन का अर्थ होगा सामाजिक-जीवन हमारा समूचा भौतिक व्यावहारिक जीवन। आसन की पवित्रता का क्या मूल्य है यदि उसी मंत्र के आधार पर जीवन की पवित्रता न हो? इतने

महान् मंत्र से उसके अनुकूल रक्षा होनी चाहिये। वही मंत्र का तात्पर्य भी है। विष्णु समस्त सृष्टि के रक्षक हैं। विष्णु पृथ्वी को उसी के अन्तर्गत धारण किये हुए हैं और पृथ्वी समस्त लोकों को धारण की हुई हैं। पृथ्वी को छोड़कर बादलों में रहने वाले मनुष्य के लिये कहीं भी ठौर नहीं। छांदोग्य उपनिषद् में कहा है कि "सर्वेषां भूतानां पृथ्वीरसः"। फिर पृथिव्या अधि-सानवि पृथ्वी से सत्यलोक पर्यन्त हम वैष्णवी व्यवस्था का दर्शन पाते हैं। छांदोग्य में नाना कथा कहानियों के साथ विवरण बहुत सुललित प्रकार से उपस्थित किया गया है। परन्तु रूपकों को छोड़कर सत्यधर्म को देखना चाहिये। विष्णु भगवान् पृथ्वी को धारण किये हुए हैं। पृथ्वी समस्त लोकों को धारण किये हैं। उन्हीं में आसन जमाये मैं बैठा हूँ अतः पृथ्वी मेरा धारण कर मेरी रक्षा करे। फिर एक छिपी बात मन्त्र में है। उसे जड़ता के हिसाब से नहीं समझा जा सकता। मैंने तो आसन पर बैठते ही पुण्डरीकाक्ष विष्णु को स्मरण करके मेरे हृदय में धारण कर लिया नहीं तो स्मरण करने से मतलब ही क्या ? अब तो रक्षा के निमित्त मेरा 'स्व' पर पूर्ण अधिकार हो गया है। तभी तो भीतर बाहर सब कुछ शुचिप्रह होगी।

भगवान् का व्रत है कि वह सत्य की रक्षा करते हैं। दोषों का नाश, धर्म का संस्थापन पृथ्वित्वया के मंत्र द्वारा आत्मरक्षा का प्रबन्ध हुआ। पहला व्रत पूरा हुआ।

दूसरा मंत्र का काम है अघमर्षण अर्थात् पाप का नाश। उस मंत्र में बारह भाव हैं। ये बारह भाव धार्मिक साहित्य में विख्यात हैं। पाप अर्थात् दोषों के कारण भाव बिगड़ते हैं। कुभाव बनते हैं। भाव शुद्धि द्वारा दोषों का अन्त होता है जीवन निर्मल रहता है। भाव शुद्धि तभी हो सकती है जब हम भावों के शुद्ध रूप क्रम और नियम का ध्यान करें। पहले निराकार ब्रह्म का ध्यान किया जाता है वह है ऋत। फिर साकार का वह है सत्य।

यह तप से उपजते हैं। वही तप स्पष्ट दीखने लगता है। सर्वत्र तप ही तप है। यही पराक्रम है, तीसरा भाव। यह सब मन के भाव हैं सृष्टि के विस्तार के समझने की चेष्टा में। फिर हम देखते हैं कि जो कुछ उदय होता है, उसकी रात्रि भी होती है। वह कालरूप है, चौथा भाव है। फिर भवसागर बह रहा है। इस पांचवें भाव से संवत्सर उत्पन्न होता है। संवत्सर के वास्तविक अर्थ के लिये उपनिषदों का अवलोकन करना चाहिये विशेष करके बृहदारण्यक का। वह छठा भाव है। सातवें भाव में अहोरात्र का विधान होता है। इसका अर्थ दिन रात तो है ही परन्तु इसी से होराचक्र बनता है। सृष्टि के धनी और वश में रखनेवाले का यह सप्तम भाव है। उसमें जीवन का उदय अस्त है, प्रसव और प्रलय है। इस सप्तम भाव की लीला सृष्टि के संचालक की आँखमिचौनी में है। उसी की पूर्व कल्पना के अनुसार सृष्टिका पूर्णतया अन्त नहीं होता। फिर भी यथापूर्व सूर्य चन्द्र अपनी प्रभा लिये हुए प्रगट होते हैं और सृष्टि का क्रम फिर से जारी होता है यह आठवें भाव का चमत्कार है। फिर नवें, दशवें, ग्यारहवें भावों का वैसे ही विस्तार, द्युलोक; पृथ्वीलोक, अन्तरिक्ष लोक और स्वर्गलोक। इस दिव्य दर्शन पर भरोसा न रखनेवाला पाप में फँसता है। अटल विश्वास करने वाला निश्चित रहता है।

तीसरा व्रत है धर्म संस्थापन का। उसका प्रतीक है गायत्री मन्त्र द्वारा वारिवेष्टन। धर्म के मूल मंत्र के घेरे में रहना। सदा शुद्ध बुद्धि से काम लेते रहना यह है गायत्री की प्रेरणा। गायत्री से सहस्रधारा मन्त्रणा निकलती है उससे घिरे रहने से हमारा धर्म डिगता नहीं है।

इस प्रकार आसन-शुद्धि, भावशुद्धि और चतुर्दिक् शुद्धि द्वारा हम इसी पार्थिव जीवन में जो भगवान् नित्य दिव्य जन्म कर्म धारण करता है उसके तत्व को पाकर धन्य होते हैं। उसी का प्रणव ॐकार है। उस

ॐकार को हमारी साँस में लिये हम दूसरे तत्व अर्थात् वायु तत्व के प्राणायाम में पहुंचते हैं।

इतनी बड़ी कृपा का पात्र बनकर हम प्रायश्चित करते हैं कि हम व्यर्थ ही लोकों में भटक रहे थे। 'भव पंथ भ्रमितामितदिवस निशिकाल कर्मन गुण भरे। मनुष्य शरीर पाकर प्राणों के सांस तुच्छ कामों में खोते रहते थे। अब सातों लोकों में आधिदैविक ज्ञान के साथ आराध्य देव सविता के गायत्री मंत्र को प्राणों में धारण करेंगे सौर आध्यात्मिक ज्ञान को धारण करेंगे जिससे हमारे प्राण यजुश्छन्दी हो जायं। तन, मन, बुद्धि, आत्मा एक साथ बल संग्रह करते हैं। यह इस प्राणायाम या हठ योग के सार की विशेषता है। यह केवल दीर्घ निःश्वास की कवायत नहीं है। यह पापमुक्त महाप्राण यजुपदगामी कैसा यदि जल और विद्या से पूरा प्रेम स्वभावसिद्ध न हो ? जल का सेवन तो होता ही है परन्तु जल की उपमा से विद्या के सेवन को समझे बिना साधक केवल जल में डुबकी लगाने वाला रह जायगा। जल तत्व के पांच मंत्र हैं। पाँचों विद्या के महत्ता को उतना ही बताते हैं जितना जल के गुणों को। इतना ही नहीं विद्या का अर्थ मुख्य हो जाता है। जल का अर्थ गौण रह जाता है, जल विद्या का सहकारी बन जाता है। जल की उपमा से विद्या के गाम्भीर्य तक हम पहुँचते हैं। पूर्व अर्थात् वायु भाग के यजु के साथ तीसरे भाग की संधि होती है।

वैदिक साहित्य में पंचामृत होता है। रूपक, रस, वक्रोक्ति, रीति और ध्वनि, ये पांच अमृत पाँच रत्न अथवा अलंकार भी कहलाते हैं। संध्याके तीसरे अर्थात् जल तत्व अथवा विद्या के भाग में इनके पांच सांकेतिक शब्द हैं। पहले मंत्र में अमृतयोनि, दूसरेमें शिवतमरस, तीसरेमें द्रुपदादिव मुमुचानः, चौथे में यथापूर्व पाँचवें में अन्तश्चरसि।

जल पृथ्वी की लक्ष्मी है। जल बिना वह सूखी निर्जीव और रूपहीन

हो जाय। मनुष्य तो नित्य जल के स्नान पान से शुद्ध होता है। पूजा में जल के आचमन से मन को स्वस्थ और स्थिर किया जाता है। इन सबसे बढ़कर भी जल का एक गुण है। शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ के पहले ही मंत्र में उसका उल्लेख है। अज्ञानी पुरुष किसी पवित्र काम के योग्य नहीं। वह असत्य बोल जाता है उस कारण से उसे भीतर से पवित्र होना चाहिये। जल शुभ कर्म के योग्य है। जल की उपमा भी विद्या के लिये है। शास्त्र विद्या वैसे ही शुभ कर्म के योग्य है। शुभ कर्म के योग्य होकर हम व्रत में आगे बढ़े। जल पवित्र है, शास्त्र विद्या पवित्र है। पवित्र पूत होकर व्रत में आगे बढ़ो। यही कारण है कि यजमान सर्वप्रथम आचमन करता है। साथ ही साथ मंत्र की एक घूंट पी लेता है।

वेद में साधक विद्या देवी से प्रार्थना करता है कि आपो भवन्तु पीतये। हे देवी! तू जल बन जा मेरे पी जाने के लिये। विद्या सरल तरल और मीठी न हो तो लोहे के चने बन जाती है और पाठक का दम घुट जाता है। विद्य को पानी बनाने की विद्या शास्त्रों में है। उसी का सार जल तत्त्व के पांच मंत्रों में है। वार वार उनका स्मरण न किया जाये तो विद्या पत्थर बन जाती है। फिर लोहा। फिर ऐसा भार कि उससे मूढ़ जन दूर भागते हैं।

पहला मंत्र है कि हमें जल रूपा विद्या का सूर्य से सम्बन्ध करना है। सूर्य तो सूर्य ही हैं। तेज का स्रोत है। हमें जगाता है। सूर्यश्च मा मन्युश्च फिर वह हमें उत्साह देता है। फिर भी हमसे भूल हो सकती है। अतः वह है मन्युपतयश्च मंत्रणा देने वाला गुरु। अग्नि की भी उपमा सूर्य से है और सूर्य की किरणों की सत्य से। जल अमृत योनि है। अमृतवाणी का तो कहना ही क्या है। उनके गुण तभी खिलते हैं जब सूर्य और सत्य की ज्योति उनपर पड़ती है और हमें तभी लाभ मिलता है जब हम अपने को उस संगम में न्योछावर कर दें।

वैसे ही दो पहर के मंत्र में भोजन की उपमा विद्या के अन्न के लिये भी है। उच्छिष्ट अर्थात् झूठ वह विद्या नाम से कहलाने वाली है जिसे दूसरों ने चखकर छोड़ दिया है। वह किसी काम की तो है नहीं वरंच हानिकारक है। अभोज्य वह है जो चाहे नई हो परन्तु पाने योग्य नहीं है। अनिष्ट करने वाली है, विष है।

दूसरा मंत्र है आपोहिष्ठा। वह जल की विद्या के रसों की प्रशंसा हैं। वे कल्याणकारी हैं। बल और वीरता देने वाले हैं। अद्भुत दर्शन उपस्थित करते हैं उनमें जो शिवतम रस है वह तो माता की तरह वात्सल्य दिखाता है। कहाँ तक कहें समूची सृष्टि को जीवन दान करता हैं। वही रस हमकों नवजीवन देता है। बारम्बार इस प्रकार से रस का आस्वादन करनेवाला स्वयं रस बन जाता है। रसो वै सः। भागवत पुराण में इसका सुन्दर प्रमाण है। वेद मं कहा है, अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः। ऐसे संयोग से विश्व भर में असंख्य सुमनों की शोभा खिल उठती है। फूलों की और मनीषियों की।

तीसरा मंत्र हैं द्रुपदादिव मुमुचानः। जल हमें वृक्षोंके बनसे बचाता हैं। यह कैसी बात? डूबते को तिनके का भी सहारा आशाप्रद मालूम होता है, वृक्ष मिल जाय तब तो चिन्ता ही न रहे। इस मंत्र की तीनों उक्तियों सें वक्रोक्ति है। जंगल में रास्ता भूले हुये को यदि नदी मिल जाय तो वह उसके सहारे बंधन से मुक्त हो सकता है वैसे ही माया बन से विद्या की धारा हमें मुक्त कराती है। फिर स्विन्नः स्नातो मलादिव। पसीने से भरा हुआ मनुष्य स्नान करने से निर्मल हो जाता है। यह कैसी बात? पहले तो निर्जन स्थान में नदी के किनारे इतनी कीचड़ होती है कि स्नान कर भी ले तो निकलते समय कीचड़ से लिप्त। फिर पसीने पर स्नान तो बीमारी को बुलाना है। परन्तु मंत्र का तात्पर्य है कि विधि के अनुसार स्नान करे तभी

लाभ होता है। विद्या के अवगाहन से जो मनुष्य व्यापार में पसीने पसीने हो गया है वह निर्मल हो जाता है। इसमें कीचड़ और जुकाम का भय तक नहीं है। यह बात सत्य है कि जल को छेड़े नहीं तो समय पाकर शुद्ध हो जाता है परन्तु उसे उबाले और छान लेवे तव और भी शुद्ध हो जाता है। वही घी के बारे में भी है और वही विद्या और आत्मा के विषय में। वह तप का प्रभाव है।

चौथा मन्त्र है अघमर्षण का। यह पहले स्थल पर आ चुका है अब जल के प्रसंग में है, कारण, भावों की धारा ही पापों के नाश की एकमात्र रीति है।जैसे पहले होता आया है वैसे अब भी होगा। वेद में कहा है कि सुमित्रिया जलधारा और उसके अनुसार शास्त्र विद्या और सच्चरित्र की धारा औषधि का काम करती है और गंदे जल, गंदे साहित्य और गंदे व्यवहार की तो वही गति हो जो द्वेषियों की होती है।

पांचवें मन्त्र में निराली ध्वनि है गुफाओं में गूंज। वैसे ही बाहर कल-कल ध्वनि से लेकर नाना प्रकार का जलरव। वैसे ही वेद ध्वनि का प्रभाव हजारों वर्षों से प्रसिद्ध। पहाड़ों की गुफाओं में और विश्व के सम्मुख यह वेद ध्वनि यज्ञ का प्राण है। यही सभी तत्वों में आकाशवाणी है। नाद ब्रह्म है ।जल की ध्वनि वर्षा के नवजीवन की सूचना देनेवाली है। विद्या का पाठ विद्या का संगीत मरते को अमर बना सकता है।

वेद ध्वनि के साथ हम सूर्य को अर्घ देते हैं, परंतप परमपुरुषार्थी स्वयं हमारे सामने आ गया। हम उसका हार्दिक स्वागत करते हैं। चारों मन्त्रों से हम उससे चारों पुरुषार्थ ग्रहण करते हैं। वह हमें उत् उत्तर उत्तम धर्म में अग्रसर करता है। वेदों का अर्थ खोलता है। चित्र की तरह सुन्दर है। उसके चक्षू में अनन्त प्रेम है त्रिभुवन के लिये। वह तो सबका धारण करने वाला

है। समूचे चराचर की आत्मा। उसी सूर्य और परमात्मा से हम आत्मवत् सर्वभूतेषु बनने की प्रेरणा पाते हैं।

और वह चक्षु तो देवताओं के हित के लिये सामने प्रगट है। हमें भी भक्ति और देवसेवा सिखाता है। हम सौ वर्ष तक उस सेवा पर चलें। उतना ही क्यों! सौ वर्ष से अधिक हो तो क्या आपत्ति है? हमारे शरीर के साथ आत्मा का विचित्र अभिसार है, चाहे जितने वर्षों की आयु है, उतने ही का सम्बन्ध है। शरीर स्वयं पतित होता है और आत्मा को पतित करता है। शरीर छुटने के बाद आत्मा को कष्ट भोगना पड़ता है। अतः चेती हुई आत्मा का ही प्रकार है कि हे मानव शरीरधारी, समय रहते अपने सभी अंगों का आत्मोद्धार के लिये न्यास करो। बुरे वातावरण का त्याग करो और ज्ञान के शुद्ध आकाश में तन, मन, वचन से अपने को न्यस्त कर दो। यह आकाश तत्व की पहली क्रिया है परन्तु शरीर अर्थात् पृथ्वीतत्व को लेकर।

जल पर पद्म खिलते हैं। आकाश तत्व में। उनपर भंवरे बैठते हैं। वैसे ही सृष्टि और विद्या के पद्म पर कई देवी और देवता, आसन जमाते हैं। वैसे ही गायत्री पद्मासना है। उसके रूप और परिधान इत्यादि बड़े शोभायमान हैं। गायत्री के अलंकारों से वेद पुराण और सभी शास्त्र भरे हुए हैं। इतनी निर्मला सजी हुई देवी के दर्शन पाकर हम धन्य हैं।

सूर्य का तेज गायत्री को समझकर नित्य जपनेवाले में जाता है। स्वभाव में सुस्ता नहीं रहती तेजोऽसि। वह स्पष्ट, स्वच्छ, नीतिचतुर वीर्यवान् होता है। शुक्रमसि वह मर्त्य तो होगा नहीं, अमृतपान करके अमर्त्य हो जाता है। अन्त में आता कहां है। परमधाम में। उसकी पहुंच अधूरी नहीं रहती है। परन्तु उस धाम में जाते ही साथ साथ नाम या यश पुकार कर कहता है कि देवहित की सेवा के लिये तत्पर हूँ। धामनामासि।

अपने सुन्दर स्वभाव के कारण देवों को और गुणीजन को प्रिय है। साथ ही साथ शत्रुओं से दबनेवाला नहीं है और कर्मकौशल से देवताओं के यज्ञ का उद्धार करनेवाला रहता है।

गायत्री ही तो ठहरी। रक्षा करने के लिये वायु की तरह आगे बढ़ती है। वह एक चाल एक पद जानती हैः कि मैंने सविता का वरण किया है। उसके साथ मेरा स्वयंवर है। मैं अन्य किसी के पीछे नहीं चलती। उसकी व्यवहार बुद्धि एक है। वह अव्यभिचारिणी है। फिर भी हमारा समझ के लिये दो पद दिखाती है। दूसरा पद है कि वह सविता भर्गोदेव अंधकार को नाश करने वाला है। फिर हम तीसरा पद देखते हैं कि हमारी बुद्धि को ठीक रास्ते पर इष्टदेव चलाता है। संसार में हम देखते हैं कि अच्छी से अच्छी बुद्धिवाले भी भूल कर जाते हैं। उन्हें बुद्धि के परे वाले देव की कृपा की आवश्यकता रहती है। यो बुद्धेः परतस्तु सः। उसके रहस्य की ध्वनि मात्र ही मिलती है। वह शब्दों में बंधा हुआ नहीं हैं। श्रद्धा से हम उस अव्यक्त चौथे पद में विश्वास करते हैं। इतना ज्ञान होने पर भगवती भक्त पर सब कुछ छोड़ देती हैं। स्वयं अपदस्थ हो जाती हैं। यह पंचम भाव है। इसमें भक्त को समूचा यश देती हैं। उसे ब्रह्मपद पर बैठा देती हैं।

फिर भी भगवती की लीला अपरम्पार है। वह न मालूम किस लोक में अपने अस्तित्व का मान हमें देती हैं। उसकी गति और उसकी लीला हमारी पहुँच के बाहर है। न हि पद्यसे। यह सब छठापद होते हुए भी विचित्र चौथे पदकी माया है। गायत्री भगवती को सप्तपदी के सातवें पद में हमारे प्राण प्रार्थी होकर कहते हैं। नमस्ते देवी! तेरे चौथे पदकी झांकी भूत, भविष्य वर्तमान में इहलोक, परलोक सातों लोकों में, इह जीवन और पूर्व के और होने वाले असंख्य जीवनों में बसती है। तेरी कृपा हो तो हमें भी कुछ दीख जाय। रजोगुण के प्रभाव को हटा। चलते हुये पैरों की धूल में हमें भुला

देती हैं। समूढमस्य पांसुले। और जो तमोगण की छाया, मृत्यु की छाया बनी हुई वह मुझे न ग्रसे। तेरी विभूति को मैं पा जाऊँ यही मेरी यात्रा है। तीन व्याहृति हमें त्रिभुवन का स्मरण कराती हैं। उसी में समूचे जीवमात्र के जीवन की गति है इनका बार बार स्मरण परमपद की प्राप्ति में विशेष सहायक है।

हम गायत्रीके निर्मल आकाश में जप आरम्भ करते हैं तन्मय होकर। जप स्वयं यज्ञ है। यज्ञों में भगवान् हैं। १०८की संख्या का महत्व १०८ उपनिषदों से दिव्य रूप से प्राप्त होता है यह भी चमत्कारी कथा है। उसके लिये एक अलग लेख की आवश्यकता है। सन्ध्या का ही विषय अथाह समुद्र सा प्रतीत होता है। परन्तु इसमें गोते लगाते रहनेसे हृदयका समुद्र इसे अपना परिचित बन्धु मान लेता है। वह साधक का स्वभाव बन जाता है। समुद्रमेवास्य बंधुः, समुद्रो योनिः वही समुद्र हर समय में हमारे काम आता है हमारे हर प्रकार से हितू है, उसी में अन्तिम विश्राम मिलता है वास्तविक बंधु है। वही समुद्र हमें नवजीवन देता है। वही हमारी माता है। उसीके हम चन्द्र हैं।

सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

अथ सन्ध्या प्रारभ्यते

मन्त्रों के अर्थ सहित सन्ध्या का विधान

ॐ आचम्य प्राणानायम्य ।

सर्वप्रथम आचमन और गायत्री मन्त्र से प्राणायाम सप्तव्याहृतिपूर्वक कर नीचे लिखे मन्त्र से शरीर शुद्धि के लिये जल को छिड़के।

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थांगतोऽपि वा ।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥

ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु ३

अपवित्रः—अपवित्र हो, पवित्रो वा-चाहे पवित्र हो, सर्वावस्थांगतोऽपि वा विष्णोरभक्तिकाऽवस्था—विष्णु भगवान् में भक्ति न होने की अवस्था को भी प्राप्त हो किसी भी अवस्था में। यः स्मरेत्—जो स्मरण करे। पुण्डरी-काक्षम्-कमल के समान आँखों वाले विष्णु को। सः-वह। बाह्याभ्यन्तरः-बाहर और भीतर। शुचिः-पवित्र है ।

यह मन्त्र प्रत्येक मनुष्य चाहे बालक, स्त्री और वृद्ध हों उन सभी के लिये उपयोगी है। यहाँ पुण्डरीकाक्ष इसलिये कहा गया कि वह परमपिता दिव्य दृष्टि से पूर्ण है और उसमें स्नेह भी पूर्ण है संसार को और मनुष्य मात्र को शुद्ध करना उनका (विष्णुभगवान् का) प्रधान व्रत है।

फिर दाहिने हाथ में अक्षत पुष्प लेकर सन्ध्या का सङ्कल्प करे—

ॐ तत्सदद्यैतस्य ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीयप्रहरार्धे (परार्धे) श्री श्वेतवाराह-कल्पे जम्बू द्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते पुण्यक्षेत्रे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे अमुकसम्वत्सरे अमुकमासे अमुक पक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्नोऽमुकनामाऽहं ममात्मनः श्रुति-स्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थं श्री भगवत्प्रीत्यर्थं प्रातः । मध्याह्न । सायं सन्ध्यो-पासनं कर्म करिष्ये ।

वैदिक, तान्त्रिक एवं पुराणोक्त मान्त्रिक विधानों में प्रत्येक मन्त्र, बीज मन्त्र और सभी शुभकर्मों में ऋषि, छन्द, देवता एवं कर्म का विनियोग बताया गया है ।

अधिकारी महानुभावों को विशेष रूप से इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि जो मन्त्र जिस २ ऋषि ने देखा और उसकी सिद्धि प्राप्त हुई उस मन्त्र का वह ऋषि कहा जाता है ।

जिस प्रकार शरीर पर वस्त्रों को धारण करने से शोभा अधिक निखर आती है और उससे मनस्तोष होता है उसी प्रकार ऋषि, छन्द, देवता और उस पवित्र कर्म के विनियोग को पढ़ने से मन्त्र की विलक्षण विशेषता चौगुनी प्रस्फुटित हो जाती है । इसलिये प्रत्येक कार्य (विधि) में विनियोग का विशेष महत्व है ।

भूमिशुद्धि का विनियोग और मन्त्र :—

पृथ्वीति मन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसने विनियोगः ।

पृथ्वीति मन्त्र का ऋषि, छन्द और देवता बताकर यह संकेत दिया गया कि संयम नीचे से रक्खा जाय और दिव्य दृष्टि के लिये ऊपर से प्रेरणा ली जाय ।

नीचे का मन्त्र पढ़कर आसन पर जल को छिड़क दें और उसकी शुद्धि कर देवे :—

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि ! त्वं विष्णुना धृता। त्वं च धारय मां देवि ! पवित्रं कुरु चासनम्।

पृथ्वि—हे पृथ्वी देवी, त्वया—तुम्हारे द्वारा, धृता—धारण किये गये, लोकाः—सम्पूर्ण सातों लोक, देवि—हे देवि दिव्यगुण सम्पन्ने, त्वं—तुम, विष्णुना-विष्णु के द्वारा, धृता—धारण की गई हो, त्वं च—और तुम, धारय मां—धारण करो मुझे, देवि-हे दिव्य गुणों से युक्त, पवित्रं-पवित्र, कुरु-करो, चासनम्-और आसन को।

वेद मन्त्रों का नियम है कि वह आनुपूर्वीरूप से ही अभिप्रेत अर्थ लिये अपने मूल अर्थ को विशेष अभिव्यक्त करता है और उसमें ही शब्दार्थ का रहस्य अधिक चमत्कार पूर्ण स्फुट होता है। यह अत्यन्त अद्भुत साहित्य की चमत्कृति है।

पृथ्वि—यह प्रथम सम्बोधन पार्थिव व्यापार को बताता है।

(१) पृथ्वी का आधिभौतिक ध्यान किया जाता है। समूचे लोक (सातों लोक) पृथ्वी पर आश्रित हैं और पृथ्वी ही उन्हें धारण करती है उनकी आधार भित्ति और कहीं नहीं है। आसन साधन नहीं साध्य हो गया है।

(२) फिर आधिदैविकता पर आते हैं। हे देवी ! तुम विष्णु द्वारा धारण की गई हो अर्थात् प्रतिपालक धर्म पर तुम टिकी हुई हो, साथ ही विष्णु परम देव हैं और तू (पृथ्वी) परम देवी हो। तुम दोनों का यह जो सुन्दर सम्बन्ध है वही हम तनुधारी जीवात्मा गण का अहोभाग्य है।

(३) फिर आध्यात्मिक स्तर पर आते हैं। इसमें प्रत्येक जीवात्मा का

आधार पृथ्वी पर ही है। इससे किसी प्रकार की घृणा करके उसका (जीवात्मा का) निस्तार नहीं हो सकता। इस भूमण्डल (पृथ्वी) पर अपने जीवन को पवित्र बनाकर ही वह परम पद प्राप्त कर सकता है। वही चतुर्थ पद में "पवित्रं कुरु चासनम्" से अभिव्यक्त है।

उस परमपदरूपी आसन के समान दूसरी और कोई स्थिति पवित्रतम नहीं हो सकती और उसे हम आसन पर बैठे ही पा सकते हैं। यह आत्म-रक्षा का रहस्य है। अर्थात् आसन द्वारा पृथ्वी के अधिष्ठात्री देवता विष्णु से धर्मस्थापन की प्रेरणा ली जाती है।

फिर शिखा (चोटी) बन्धन गायत्री मन्त्र से कर ॐ केशवाय नमः ॐ माधवाय नमः ॐ गोविन्दाय नमः इन्हें बोलता हुआ तीन बार आचमन करे तत्पश्चात् नीचे के मन्त्र से पुनः आचमन करे।

ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः समुद्रादर्णवादधि सम्वत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः।

ऋतञ्च—ऋत भी, सत्यंच—सत्य भी, तपसो—तप से, अधि-अजायत-प्रगट हुए, ततः-उसके वाद रात्र्यजायत--रात्रि प्रगट हुई, ततः—उसके बाद, समुद्रो अर्णवः-समुद्र अर्णव (प्रगट हुआ,) समुद्रादर्णवात्—समुद्र अर्णव से अधि-बाद में, सम्वत्सरः—सम्वत्सर, अजायतः-हुआ, अहोरात्राणि-दिनरात्रि को, विदधत्—विशेष रूप से वनाया, विश्वस्य—विश्व के, मिषतः—संकोच और विकास की क्रम गति के साथ। वशी—जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति से काम लेने

वाला और समस्त सृष्टि को वश में रखनेवाला। सूर्याचन्द्रमसौ—सूर्य चन्द्र को। धाता—उसी धाता ने। यथापूर्व, जैसे पहले वैसे ही अब (अटल प्राकृतिक नियम के अनुसार)। अकल्पयत्—बनाया।

ऋत—निराकार है उसमें सब फैला है वह गूढ़ है। वेद में ऋत उसे बताया जिसका केन्द्र न हो. सत्य वह हैं जो केन्द्र वाला हो। सत्य वही है जो साकार रूप से दीखे और उसे ही माया के साथ भ्रमित होकर देखे वह असत्य है। ऋत और सत्य दोनों ही तप पर निर्भर है न कि अन्धकार पर अभीद्धात् ऋत सत्य का प्रगट करनेवाला भी तप है। पृथ्वी बहुत भारी तप से बनी है और सर्वत्र ही "तपस्तप्त्वाऽसृजद् ब्रह्मा" तप को तप करने के बाद ही ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की। अब और आगे जो सृष्टि का निर्माण जारी है वह भी तीसरा तप हुआ। उपनिषदों में ब्रह्मा को तप की ही संज्ञा दी है। यही तप आज भी चमत्कार पैदा करनेवाला है भले ही मनुष्य में रहकर या प्रकृति में रहकर बड़ी से बड़ी या छोटी से छोटी अच्छी घटना तप के प्रभाव से ही होती है।

तप के अन्तर्गत विश्राम है उसका सबसे गूढ रूप है रात्रि अर्थात् महा निशा जिसे हम मृत्यु के नाम से जानते हैं। विस्तृत सृष्टि में वही रात्रि प्रलय का रूप भी धारण करती है, वही रात्रि "या निशा सर्वभूतानां०" कह लाती है। महामाया रूपी रात्रि में साधारण मनुष्य सो जाता है। अभि-प्राय है कि कई प्रकार के भ्रमों (अज्ञान) में पड़ जाता है और संयमी जाग-रूक रहता है और जिस महारात्रि के आने से मोह में फँसे मनुष्य की आँखें खुलती हैं और उसे अपने कुकर्मों के फल दीख पड़ते हैं वैसी अवस्था में संयमी सुख की नींद सोता है। इस ऋत सत्य एवं दिन और रात्रि के योग से भवसागर बनता है उसे समुद्रो अर्णवः इसलिये कहा गया है कि वह निरन्तर प्रवाहशील है। "अर्णवः" का प्रवाह चलता रहता है बहता रहता

है। "समुद्रो अर्णवः" से विद्या के अगाध समुद्र का विस्तार भी अभिप्रेत है।

यह जो भवसागर का प्रवाह (बहाव) है उसका प्रधान उद्देश्य है कि यह सम्वत्सर को प्रगट करे। सम्वत्सर से उष्णता, शीत, वर्षा, समशीतोष्णता और उन सार्वजनीन रसों के उत्पादक अपेक्षाकृत वातावरण की सृष्टि करनेवाले तत्वों का अर्थ अभिप्रेत है। जिस जिस क्रम से रस का परिणाम करनेवाले ये तत्त्व उत्पन्न हुए हैं उनका व्यापक अर्थ है। उसी प्रकार से यह छहो कार्य छहों ऋतुओं में सूर्य चन्द्र लोक से प्रकाशित हमारी सृष्टि में नाना रूप से आ जाते हैं।

"सम्वत्सर" का सबसे स्थूल अर्थ यही है कि छहों ऋतुओं को हम लीलामय की लीला की शोभा मानेंगे और उसके विस्तार के लिये ही यह क्रम चलता रहता है। अतः जीव को इसी हेतु अपने जीवन को कल्याणकारी बनाना चाहिये। सम्वत्सर शब्द के जो उत्तरोत्तर गूढ़ अर्थ हैं उनका उपनिषदों और पुराणों से पता लग सकता है। सम्वत्सर का अर्थ वेद में प्रतिपादित षट् स्कन्ध छै विलक्षण विशेषतायें हैं जिन्हें विद्या प्राप्ति के लिये आवश्यक माना जाता है।

पहले हमने देखा सृष्टि विस्तार हुआ (जीव फिर देश) सम्वत्सर के बाद हम देखते हैं कि दिन रात प्रगट हो गये। ये ब्रह्मा के दिन रात हैं, यही अहोरात्र हैं इसे ही होराचक्र कहते हैं। यह होराचक्र समूचे भाग्य का चक्र है। (अहोरात्र का गूढ़ अर्थ है—होराचक्र)। इसके द्वारा साधारण जीव और समूची सृष्टि भगवान् के वश में रहती है और यही दिन रात अधिक स्पष्ट होकर सूर्य और चन्द्र के रूप में प्रगट होते हैं। समूचे विश्व में अहोरात्र का विस्तृत रूप है और उससे नीचे के स्तर पर उतरकर हम नवग्रही सूर्य और चन्द्र के लोक में आते हैं तो उनका सीमित क्षेत्र होने पर भी वह हमारे लिये अधिक स्पष्ट है। वह नियम इतना पक्का है कि प्रलय के बाद

भी सूर्य, चन्द्र ही प्रगट होते हैं और इस सौरमण्डल के बाहर भी हैं। समूचे ब्रह्माण्ड में भी हैं और सूर्य चन्द्र के द्वारा अधिकृत सभी लोकों में भी।

दिव—द्यु-लोक—धर्म, पृथ्वीलोक—अर्थ—,"आवपनं महत्", अन्तरिक्ष लोक—काम—कामनानुसार योनियां, स्वर्लोक—श्रेष्ठफल, शुद्ध सात्त्विक जीवन द्वारा मोक्ष, शुभकर्मानुसार उत्तम योनियां।

इस प्रसंग में सूर्य चन्द्र आदि सभी होने के बाद प्रथम द्युलोक का विस्तार होता है फिर पृथ्वीलोक का, फिर अन्तरिक्ष और सबके बाद फिर स्वर्लोक का।

संक्षेप में, इस मन्त्र में बारह शब्द हैं वे बारह भाव के बीज हैं। इनके शुद्धरूप के स्मरण मात्र से अघमर्षण अर्थात् पाप का नाश होता है, कारण समस्त पाप इन में आये बारह भावों को या इनमें से किसी एक को भूलने के बाद होता है। इस क्रम को याद रखनेवाले का जीवन सदैव उज्ज्वल है और जो इसे भूल गया है उसका पदे पदे पतन अनिवार्य है।

फिर वारिवेष्टन गायत्री मन्त्र से किया जाता है इसमें चारों तरफ बुद्धि और धर्म की धारा छोड़ दी गयी।

प्राणायाम के विनियोग

ॐ कारस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्रीछन्दोऽग्निर्देवता शुक्लोवर्णः सर्वकर्मारम्भे विनियोगः।

ॐ सप्तव्याहृतीनां विश्वामित्रजमदग्निभरद्वाज-गौतमात्रिवशिष्ठकश्यपाऋषयो गायत्र्युष्णिगनष्टु-ब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुबूजगत्यश्छन्दांस्यग्निवाय्वादित्यबृहस्प-

तिवरुणेन्द्र विश्वेदेवादेवता अनादिष्टप्रायश्चित्त-प्राणायामे विनियोगः।

ॐ गायत्र्या विश्वामित्रऋषिर्गायत्रीछन्दः सविता देवताऽग्निर्मुखमुपनयने प्राणायामे विनियोगः।

ॐ शिरसः प्रजापतिऋ षिस्त्रिपदा गायत्रीछन्दो ब्रह्माग्निवायुसूर्या देवता यजुःप्राणायामे विनियोगः।

भावार्थ—ॐकार का ब्रह्मा ऋषि गायत्री छन्द अग्नि देवता और शुक्ल वर्ण है तथा सब कर्मों के आरम्भ में प्रयुक्त किया जाता है। सातों व्याहृतियों के विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप यह सात ऋषि हैं, गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुपव जगती यह छन्द हैं। अग्नि, वायु, सूर्य, बृहस्पति, वरुण, इन्द्र विश्वेदेव ये देवता हैं। अकस्मात् अज्ञान से किये गये पापों के प्रायश्चित्त के निमित्त प्राणायाम में इनका उपयोग किया जाता है। गायत्री मन्त्र का विश्वामित्र ऋषि, गायत्री छन्द और सूर्य देवता हैं एवं अग्नि उसका मुख है सब पापों को अग्नि के मुख के समीप ले जाने (भस्म करने) के निमित्त प्राणायाम में इसकी योजना की जाती है। ॐ आपो ज्योति इस शिरो भाग का प्रजापति ऋषि, यजुः, छन्द और ब्रह्मा, अग्नि, वायु, सूर्य देवता हैं तथा प्राणायोम की विधि में विनियोग है, काम में प्रयुक्त होता है।

नीचे लिखे मन्त्र से प्राणायाम करे। पद्मासन या सिद्धासन से बैठकर पहले एक-दो बार श्वांस खींचकर धीरे-धीरे छोड़ देवे। फिर अंगूठे से दक्षिण की ओर के नथुने को वन्द कर बायें नथुने से धीरे-धीरे श्वांस लेता जाय तथा प्राणायाम के मन्त्र को तीन बार जपे। इस समय चतुर्भुज शंख, चक्र

गदा पद्मधारी पीताम्बर नीलवर्ण विष्णु का ध्यान नाभि में करे। पश्चात् कनिष्ठा व अनामिका से बाँये नथूने को वन्द करने से दोनों नाक के छिद्र बन्द होने पर तीन बार फिर वही मन्त्र पढ़े। इस समय कमल के आसन पर विराजमान रक्तवर्ण चतुर्मुख वेदहस्त ब्रह्मा का ध्यान हृदय में करे फिर अंगूठे को दाहिने नथूने से उठाकर धीरे-धीरे श्वांस छोड़े तथा मन्त्र पाठ करे। इस समय शुद्ध श्वेतवर्ण एवं त्रिनेत्र धारी गंगाधर शिव का ध्यान ललाट में करे। श्वांस को खींचना पूरक प्राणायाम. श्वांस को रोकना कुम्भ एवं श्वांस को फिर छोड़ना रेचक कहलाता है। इसके करने से अपूर्व सफलतायें मिलती हैं। एवं मन शुद्ध होता है।

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरो३म्।

जो परमात्मा भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक इन सब को प्रकाशित करनेवाले हैं तथा जल, प्रकाश और वृक्ष औषधि तृणादि रस रूप से जगत् का पालन करते हैं। उन्हें अविनाशी त्रिगुणात्मक परब्रह्म उपासना योग्य ॐकार के रूप तेज का हम ध्यान करते हैं वह हमारी बुद्धि को सत्कर्मों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्त्यर्थ प्रेरणा करे।

नोट—ॐ से समूचे कर्म के आरम्भ में ही बहुत बड़ी रक्षा मिलती है। काल देश और कर्म की दृष्टि तथा जीवन मात्र का आरम्भ तथा अन्त के बीच का भाग (सार रूप) उसका (ॐ का) साकार रूप है। वह शुक्ल

वर्ण है सभी वैदिक कार्यों के आरम्भ में ॐ का स्मरण किया जाता है।

ब्रह्मा सृष्टि कर्ता ने ही ॐकार को देख नहीं लिया है। यह इस सृष्टि का पहला आदेश उसका स्थायीरूप और रूपान्तर सभी ॐकार के भीतर हैं। इस प्रकार के सन्ध्योपासना करनेवाले को ॐकार का ध्यान करना चाहिये।

मनुष्य शरीर के जीवन में प्रतिपल दोष भी बनता रहता है। सुतरां विशेष विशेष दोषों के लिये तत्तत् प्रायश्चित्तों की व्यवस्था और आदेश शास्त्रों में है। वह हुआ आदिष्ट प्रायश्चित्त। परन्तु साधारण दोष मात्र के लिये व्यापक प्रायश्चित्त की आवश्यकता पड़ती है। वह प्राणायाम द्वारा समस्त प्राणों की शुद्धि का रूप धारण करता है। उसके साधन के लिये हमें सातों व्याहृतियों उनके सातों प्रधान ऋषि, उनके सातों छन्द और सातों देवगण का स्मरण करने से पूर्ण सिद्धि सम्भव है। अनादिष्ट प्रायश्चित्ती प्राणायाम द्वारा समूचे दोषोंका नाश होता है।

उसी प्राणायाम के भीतरी रूप से धर्म स्थापन बनता है अग्निर्मुख और उपनयन प्रकार से। अग्निर्मुख के द्वारा तो हुआ समूचे ज्ञान और कर्म के सारको मुखबद्ध करना और उपनयनके द्वारा दिव्य दृष्टि प्राप्त करनी ; जिसमें धागे के सूत्र जो हम पहनते हैं वे मन्त्र सूत्रों के प्रतीक हैं और उन सूत्रों का अर्थ सूचना से (उपनिषदों में) दिया गया है। अग्नि-वेद और उपनयन हो गया उपनिषद्।

पृथ्वी—३ के द्वारा धर्मस्थापन, अघमर्षण और आत्मरक्षा।

प्राणवायु का ४ के द्वारा, तन, मन, बुद्धि और आत्मा इनका परिष्कार प्राणायाम द्वारा किया जाता है।

तनु को ॐ से वेष्टित कर, मन को अनादिष्ट प्रायश्चित्त से, बुद्धि को गायत्री मन्त्र द्वारा, एवं आत्मा को स्वस्वरूपका वारम्वार साक्षात्कार कराने से। इनका बल संग्रह भी इन चारों से लिया जा सकता है।

परित्राणाय साधूनाम्—ॐ द्वारा, विनाशाय च दुष्कृताम्—अनादिष्ट प्रायश्चित्त से सभी लोगों द्वारा, धर्म संस्थापन—गायत्री द्वारा एवं आजका युग-धर्म—गायत्री शिरस्क द्वारा। प्राणायाम द्वारा प्राणबल तभी सार्थक होता है जब इन चारों अंगों का साधन हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ॐ साक्षात् विराट् तनु रूप प्रायश्चित्त—मनः शुद्धि का व्यापार। गायत्री—बुद्धि को प्रधानता देनेवाली। गायत्री शिरो-भाग—आत्मा को प्रतिक्षण अपने असली रूप को धारण करनेवाला।

अतः गायत्री मन्त्र हमारे मुख और नयन को अत्यन्त पवित्र करनेवाला है और हमारे सम्पूर्ण जोवनसङ्गी धार्मिक भाव को दृढ़ बनाने वाला है। अन्त में शिरसः का मन्त्र है वह आज भी प्राणायाम को यजु (सुन्दर कर्मयज्ञ) रूप से उपस्थित करता है।

इसलिये वह युगधर्म को हमारे प्राणों की व्यवस्था द्वारा प्रशस्त बनाता है।

फिर प्रातःकाल आचमन का विनियोग पढ़कर जल छोड़ दे।

ॐ सूर्यश्चमेति ब्रह्मा ऋषिः प्रकृतिश्छन्दः सूर्यो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः।

रात में किये हुए सब ज्ञाताज्ञात पापोंके विनाशार्थ इस मन्त्र को पढ़कर आचमन करे।

ॐ सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्यु-कृतेभ्यः पापेभ्योरक्षन्तां यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदव-

लुम्पतु यत्किंचिद्दुरितं मयि इदमहममृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ।

सूर्यश्च—सूर्य भी, मा मन्युश्च—मेरा उत्साहदाता भी, मन्युपतयश्च—मेरे इष्टदेव भी, मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो क्रोधयुक्त होने पर किये गये पापों से, रक्षन्ताम्—बचावे, यद्रात्र्या जो रात्रि काल में, पापम्—पाप, अकार्षम्—किया, मनसा—मनसे, वाचा—वाणीसे, हस्ताभ्यां—दोनों हाथों से, पद्भ्यां—दोनों पैरों से, उदरेण (पेट) से, शिश्ना—उपस्थ मूत्रेन्द्रिय से रात्रिः—रात्रि के अधिपति अन्तर्यामी सूर्य, अवलुम्पतु—नाश करे, यकिंचिद्—जो कुछ, दुरितम्—पाप मयि—मेरे में रह गया, इदम्—यह, अहम्—मैं, अमृत-योनौ—अमृत योनि, सूर्येज्योतिषि—सूर्य ज्योति में, जुहोमि—आहुति देता हूँ सब पाप वह अमृत योनि नाश करे ।

मध्याह्न सन्ध्या का विनियोग एवं मन्त्रः—

ॐ आपः पुनन्त्विति विष्णुऋ॑षिरनुष्टुप्छन्द आपो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः ।

ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथ्वी पूता पुनातु माम्।
पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्र॑ह्मपूता पुनातु माम् ॥
यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वा दुश्चरितं मम ।
सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रह ॐ स्वाहा॥

आपः—जल, पुनन्तु—पवित्र करते हैं, पृथिवीम्—पृथिवी को, पृथ्वी—पृथिवी, पूता—पवित्र हुई, पुनातुमं—मुझे पवित्र करे, पुनन्तु—पवित्र करे, ब्रह्मणस्पति—ब्रह्म पतिको, ब्रह्मपूता पुनातु माम्—ब्रह्मपूत मुझे पवित्र करे,

यद्—जो, उच्छिष्टम्—जूंठन, अभोज्यम्—न खाने योग्य, यद्वा—और जो कोई, दुश्चरितंम्—दुश्चरित्र, मम—मेरे, पुनन्तु—पवित्र करे, माम—सबको ही जिनके साथ मेरा सम्बन्ध है उस मुझे आपः—जल, असतां च असत्पुरुषोंके, प्रतिग्रहम् प्रतिग्रह से जनित दोष को, स्वाहा मैं हवन करता हूँ।

अर्थात् जल पृथ्वी को पवित्र करता है पृथ्वी पवित्र करती है मुझे और पृथ्वी आदि सब मिलकर पवित्र करते हैं ब्रह्मके पति को। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि ब्रह्म के पति तो सदा पवित्र। अतः मन्त्र का आशय है कि हम दृष्टिदोष के कारण उनकी पवित्रता को नहीं देख सकते हैं, परन्तु यदि हम पवित्र हो जांय तब भगवान् भी पवित्र दीखने लग जाता है। फिर भगवान् का रूप जो पवित्र हुआ हमें बहुत अधिक पवित्र करता है इसीलिये ज्ञानीको भी सदा ब्रह्मपति को भजते ही रहना पड़तो है। अपवित्रताके प्रधान कारण क्या है ? उसका वर्णन मन्त्रके उत्तरार्द्ध में है जो उच्छिष्ट भोजन, अभोज्य न खाने जायक भोजन (च-भी) जो भी उच्छिष्ट या अभोज्य और जो भी दुर्भावना व दुष्कर्म हमसे हो जांय उन सभी से पवित्र कर हे जल उद्धार करो। जलसे पवित्र होनेपर ही भगवान्‌की सन्निधिका लाभ मिलता है

अन्तिम प्रार्थना यहहै कि जितने प्रकार के झूठ हैं उनको हम कहींसे भी ग्रहण न करें। स्वाहा—यह दृढ़ वचन है।

विद्या के पक्ष में :—

विद्या पार्थिव अर्थात् व्यावहारिक जीवन को पवित्र करती है, इस तरह से पवित्र हुआ व्यावहारिक जीवन हमारे स्वभाव को पवित्र करे। पवित्र स्वभाव के द्वारा हम भगबान् का पवित्र रूप देखते हैं। भगवान् का पवित्र हुआ रूप हमें और भी अधिक पवित्र करता है। उच्छिष्ट-जूठी (गई बीती) विद्या अर्थात् जिसे शिष्ट विद्वान् अब ग्रहण नहीं करते छोड़ चुके। अभोज्यम्— जो विद्या चाहे नई हो या पुरानी वह हानिकारक है ग्रहण करने योग्य नहीं

है। हे विद्याओ ! जिन आचरणों के द्वारा दोष उत्पन्न होता है उन सबसे पवित्र करो और सबसे बड़ी बात यह है कि 'असतां च प्रतिग्रहम्, हर तरह के झूठ को हम कदापि ग्रहण न करें यह मेरा अटल वचन है ।

सायंकालसन्ध्या का विनियोग एवं मन्त्रः—

ॐ अग्निश्चमेति रुद्र ऋषिः प्रकृतिश्छन्दोऽग्निर्देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः ।

ॐ अग्निश्च मा मन्युश्च मन्यपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पोपेभ्यो रक्षन्तां यद्ह्वा पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यांपद्भ्यामुदरेण शिश्ना अहस्तद्वलुम्पतु यत्किंचिद्दुरितं मयि इदमहममृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ।

अर्थ सूर्यश्चमेति के समान है ।

फिर मार्जन का विनियोग करेः—

ॐ आपो हिष्ठेत्यादि त्र्यृचस्य सिन्धुद्वीप ऋषिर्गायत्री छन्द आपो देवता मार्जने विनियोगः ।

शरीर शुद्धि के लिये नीचे लिखे मन्त्रों से सात से शरीर पर जल छोड़ता जाय आठवें से भूमि पर और नवें से पुनः शरीर पर मार्जन करे ।

(१) ॐ आपो हिष्ठामयो भुवः । (२) ॐ ता न ऊर्जे दधातन । (३) ॐ महेरणाय चक्षसे । (४) ॐ यो वः शिवतमोरसः । (५) ॐ तस्य

भाजयते हनः। (६) ॐ उशतीरिवमातरः। (७) ॐ तस्माऽअरङ्गमामवः। (८) ॐ यस्यक्षयाय जिन्वथ। (९) ॐ आपो जनयथा च नः।

शरीरकी शक्ति के लिये शरीरके बने रहने के और अन्नके पाचनके लिये जल की अनिवार्य आवश्यकता है।

आपो हिष्ठामय

इसमें नौ वाक्य हैं। (१) आपो हिष्ठामयो भुवः। जितने प्रकार के जल हैं वे निश्चय ही धारण करते हैं परम आनन्द को। (२) तानः—वे हमारे लिये, ऊर्जे—बल और प्राण, दधात न—धारण करें (करावें)। (३) महेरणाय चक्षसे—महान से महान शोभा और लीला को साक्षात् दिखाने के लिये। (४) यो वः शिवतमो रसः—जो उनमें शिवतम रस है। (५) तस्य भाजयते ह नः—उसका आस्वादन भली प्रकारसे हमें करावें। (६)उशतीरिव मातरः—जैसे बड़े स्नेह के साथ स्तन पान कराती है हमारी माता। तस्मा अरङ्ग मामवः-इसलिये हम उसके निकट शीघ्रताके साथ पहुंचें। यस्य क्षयायाजिन्वथः-जिसका लोकहित के लिये जीवन है। आपो जनयथा च नः—हे जल! वैसा ही जन्म हममें स्थापित करो (भाग्य)। ये ९ सोपान हैं।

जल की प्रक्रियाको हम इस त्रिभुवनमें देखते हैं वह कितनी प्रभावक है। जल का प्रभाव स्पष्ट और सुखदायक है। हमारी कितनी ही अधिक करुणाजनक स्थित क्यों न हो परन्तु जल के साहाय्यसे हमें जीवनदान मिलता है। जैसे कोई बीमार भी हो तो बल देता है, निर्बलका तो पूर्ण बल यह है ही।

आश्चर्यजनक जल का दृश्य है। अर्थात् जल के प्रभाव से जल, स्थल और नभ में अत्यन्त ही सुन्दर दृश्य उपस्थित होता है। जल की बड़ी भारी लीला और शोभा प्रत्यक्ष है एवं हम देखकर आश्चर्यान्वित होते हैं। जीव-

मात्र परमपिता परमैश्वर के शिवतम रस का अनुभव इसके द्वारा करता है और उसको अन्तरंग मानकर भोग करता है (पान द्वारा-पीकर के) । माता जैसे बालक को दूध पिलाती है वैसा ही वात्सल्य जीवमात्र के प्रति यह जलीय तत्त्व दिखाता है ।

बहुत बड़े निधड़क रूप से उपकार करने को अत्यन्त वेग और तत्परतासे प्रवाहित होकर जलधारा गतिशील रहती है । सृष्टि को भयानक अवस्था से बचाकर जल जिलाते हैं । यहाँ तक कि हम विषम सङ्कट में पड़े हुओं को भी बचाकर हमे नवजीवन प्रदान करते हैं ।

विद्या के पक्ष में ये नवों वचन सार्थक हैं इसमें नवरस और भी सुन्दर रूप से उपयोग किये जा सकते हैं ।

नीचे लिखे विनियोग पढ़कर जल पृथ्वी पर छोड़े ।

ॐ द्रुपदादिवेत्यस्य कोकिलो राजपुत्र ऋषिर-नुष्टुप्-छन्द आपो देवता सौत्रामण्यवभृथे विनियोगः ।

दाहिने हाथ में जल ले बायें हाथ से उसे ढककर तीन बार इस नीचेके मन्त्र को पढ़े और उसे सिर पर छिड़के ।

ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातोमलादिव पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः ।

द्रुपदा—

जल वृक्ष से मुक्ति कराता है पसीने से भरा हुआ स्नान करके मल से छूटकर पवित्र होता है ।जैसे आज्यघृतादि वस्त्र में से गरम कर तपाकर दोषों से पवित्र होता है वैसे ही जल हमें समूची गन्दगी से मुक्त करे । यह अर्थ विद्या पर अत्यन्त सुन्दर रूपसे घटता है ।

असली विद्या ही हमें शास्त्रजाल से और कठिनाइयोंसे परिपूर्ण संसार के सघन जंगल से मुक्तकरती है और तप व आराधना द्वारा प्राप्त की हुई विद्या हमें हर प्रकार की गन्दगी से शुद्ध करती है—

फिर अघमर्षण का विनियोग छोड़े।

अघमर्षण सूक्तस्याघमर्षण ऋषिरनुष्टुपछंदोभाववृतो देवता अश्वमेधावभृथे विनियोगः।

फिर दाहिने हाथमें जल लेकर उसे नासिकासे लगाकर नीचे लिखे मन्त्र को पढ़कर अपने बांई ओर जल को फेंक दे उसे बिल्कुल भी नहीं देखे।

ॐ ऋतंच सत्यं चाभीद्धातपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत। ततः समुद्रोअर्णवः। समुद्रादर्णवा-दधिसम्वत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतोवशी। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवंच पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः।

इस मन्त्र का भावार्थ पहले बतला दिया गया है।

निम्नलिखित विनियोग पढ़कर पृथ्वी पर जल छोड़ देवे।

ॐ अन्तश्चरसीति तिरश्चीनऋषिरनुष्टुप् छन्द आपो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः

फिर नीचे लिखे मन्त्र को पढ़कर आचमन करे।

ॐ अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः। त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योतीरसोऽमृतम्।

यह मन्त्र ध्वनि के प्रकरण का है। समूचे प्राणीमात्र के तन, मन और बुद्धि में जल विचरण करता है। शरीर की धमनियों में जल की प्राणध्वनि है। इसी प्रकार प्रत्येक व्यापार में जल की गूंज हमारे हृदय में है और गुफा में अर्थात् शरीर के अन्दर।

जल की गूँज गुफाओं के अन्दर अद्भुत रूप से प्राणियोंके हित के लिये जलस्रोत द्वारा उत्पन्न होती है और फिर जब जल बाहर प्रकट होता है क्या पृथ्वी में और क्या आकाश में अत्यन्त सुन्दर दीखता है और नाना प्रकार के प्रभावों और ध्वनियों द्वारा हमें प्रभावित करता हैं।

त्वं

यह सृष्टि के क्रमका पृथ्वी का व्यापार है उसके दिग्दर्शनार्थ है और मनुष्य के लिये भी है। विद्या रूपी जल के अभाव को लेकर तो यह मन्त्र उपर्युक्त जल के मन्त्रों के समान उपयुक्त बैठता है, क्योंकि विद्या की ध्वनि से हृदय के अन्दर और समस्त सृष्टि में यज्ञ इत्यादि और शुद्ध प्रकृतिका चमत्कार फैला हुआ रहता है।

आये सूर्य को पूर्वाभिमुख हो गायत्री मन्त्र से ३ बार अर्घ्य प्रदान करे।

ॐ भूर्भुवःस्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

कारणवश यदि भूल से काल का अतिक्रमण हो जाय तो नीचे लिखा मन्त्र अधिक बोलकर अर्घ्य दे।

ॐ आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्।

आगे सूर्योपस्थान के विनियोग एवं मन्त्र एक साथ क्रम से दिये जाते हैं। विनियोग बोलकर जल छोड़े तथा उपस्थानके मन्त्रोंको बोलते हुये प्रातः सायं दोनों हाथों को याचना के रूप में अथवा जोड़कर और मध्याह्न में हाथ ऊपर उठाकर उपस्थान करे :—

ॐ उद्वयमित्यस्य हिरण्यस्तूप (प्रस्कण्व) ऋषिरनुष्टुप् छन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः ।१।

ॐ उदुत्यमिति प्रस्कण्व ऋषिर्गायत्रीछन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः ।२।

ॐ चित्रमित्यस्य कौत्स ऋषिस्त्रिष्टुपछन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः ।३।

ॐ तच्चक्षुरिति दध्यङ्ङाथर्वणऋषिरक्षातीतपुर उष्णिक् छन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः।४।

उपस्थान के मन्त्र :—

ॐ उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रासूर्यमगन्मज्योतिरुत्तमम् ।१।

ॐ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम् ।२।

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुण-

स्याग्नेः आप्राद्यावा पृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।३।

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम-शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳश्रृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतंभूयश्च शरदः शतात् ।४।

उद्वयम् :

प्रथम मन्त्र जो है यह धर्म रूपी पुरुषार्थ की उत्तरोत्तर वृद्धि का है। उत्, उत्तर, उत्तम।

ये तीन सीढी धर्म के पुरुषार्थ की वृद्धि की है। पहली सीढी है उद्वयं तमसस्परि—हम अन्धकार के मध्य से निकलें। स्वः पश्यन्त उत्तरम्—उसके बाद तदुत्तर हम स्वः को देखें। तीन रूप लिये हुये सूर्य हमें पुरुषोत्तम का दर्शन करावें। देवं देवत्रा सूर्यम्—पुरुषोत्तम। तमरूपी अन्धकार से मुक्त देव श्रेष्ठ कर्म के द्वारा देवत्व की रक्षा करनेवाला। इस प्रसङ्ग में सूर्य पुरुषोत्तम का प्रतीक है। इसीसे हम पुरुषोत्तम की ज्योति को पाते हैं।—१

उदुत्यम् :—वेद के अर्थ के विषयमें और परमार्थ रूपी पुरुषार्थके विषय में है। प्रथम तो वेद का पूर्ण ज्ञानी हो उसमें दिव्य दृष्टि द्वारा और भी रोशनी (प्रकाश) पड़े तब समूचे विश्व के हित के लिये सूर्य का परमार्थ रूप दीखता है जिससे समूचे अर्थ की प्राप्ति हमें होती है।—२

चित्रम्—यह शुद्ध मनोकामना की पूर्ति का मन्त्र है। हमारी आँखोंको अत्यन्त प्रिय विचित्र चित्र की तरह दर्शन उपस्थित होता है। किनका?—जितने देव हैं उन सबका अद्भुत दृश्य एक साथ मिलता है कारण सूर्य

सबका प्रतीक है वह प्रकाश डालता है। सूर्य में यह अद्भुत शक्ति है कि नाना रूप धारणकर सकता है। यह चित्र पा लेने के बाद हमें ज्ञान चक्ष मिलते हैं जिससे त्रिभुवन का दर्शन हमें मिलता है। इसके बाद फिर इस त्रिभुवन में किस प्रकार जीव की गति होती है उसका हमें पता लगता है। शुद्ध कामना से जीव को बहुत सुन्दर गति मिलती है। क्योंकि सूर्य आत्मा है जगत्का भी, समूचे चराचर मात्र का ही। चित्र, चक्षु, आप्रा प्राप्त होना और आत्मा चरम सीमा है मनोकामना पूर्ण होती है। सूर्य के ध्यान से और उसके उपस्थान से हमें सूर्य के साथ आत्मीयता मिलती है।—३

तच्चक्षुः :—वह जो ज्ञान चक्ष (कर्म, ज्ञान और भक्ति को समान देखने वाला) हमें मिल गया उसे हमें देवहित में लगाना है और वह छिपी हुई कोई दुरूह वस्तु नहीं है, किसी विघ्न बाधा से दबने वाली नहीं है। शुक्रम् उच्चरत्—प्रकाशमान है। इस आयु का हम सदुपयोग करें। पश्येम शरदः शतम्—हम सौ वर्षकी आयु में सत्यको देखते रहें। जीवन कहलाने लायक (योग्य) जीवन व्यतीत करें। सौ वर्ष की आयु को और ज्ञान वृद्धि को श्रुति और सत्यवाणीके श्रवण द्वारा (सुन सुनकर) अबाधगति से बढ़ाते रहें। प्रब्रवामः - जो कुछ इस प्रकार सीखा समझा है उसका लाभ दूसरों को प्रवचन द्वारा सौ वर्ष की आयु में देते रहें। हम इस पुरुषार्थ की प्राप्ति के द्वारा कभी दीन हीन न हों सौ वर्ष की आयु में। हमारा फिर सौ वर्ष में अन्त क्यों ? सौ वर्ष के बाद भी यदि परम पुरुष की इच्छा हुई और हमें आयु मिली तो ऐसे ही शुभ कर्मों में लगाते रहें यही मुक्त जीवन का मन्त्र है।—४

अङ्गन्यास :—

ॐ हृदयाय नमः ।१। ॐ भूः शिरसे स्वाहा ।२।
ॐ भुवः शिखायै वषट् ।३। ॐ स्वः कवचाय हुम् ।४।

ॐ भूर्भुवः नेत्राभ्यां वौषट् ।५। ॐ भूर्भुवः स्वः अस्त्राय फट् ।६।

बाद में गायत्री मन्त्र का विनियोग पढ़ कर जल छोड़ दे।

ॐ कारस्य ब्रह्माऋषिर्गायत्री छन्दोऽग्निर्देवता शुक्लो वर्णो जपे विनियोगः।

त्रिव्याहृतीनां प्रजापतिऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांस्यग्निवाय्वादित्या देवता जपे विनियोगः।

गायत्र्या विश्वामित्रऋषिर्गायत्रीछन्दः सविता देवता जपे विनियोगः।

गायत्री का ध्यान

निम्नलिखत मन्त्र पढ़ कर गायत्री देवता के स्वरूप का ध्यान करे।

ॐ श्वेतवर्णा समुद्दिष्टा कौशेयवसनातथा।
श्वेतैर्विलेपनैः पुष्पैरलङ्कारैश्च भूषिता॥
आदित्यमण्डलस्था च ब्रह्मलोकगताऽथवा।
अक्षसूत्रधरा देवी पद्मासनगता शुभा॥

हे देवि गायत्री! आप श्वेत वर्णवाली कही गई हो तथा रेशमी वस्त्रों को धारण किये और श्वेत चन्दन कपूर आदि सुगन्धित पदार्थों के अनुलेपनों से चमेली आदि श्वेत पुष्पों से और नाना आभूषणों से शोभित हो सूर्यमण्डल में स्थित या ब्रह्मलोक की वासिनी हो अक्षसूत्र (रुद्राक्ष) माला

को धारण किये और पद्मासन पर विराजमान तथा कल्याण करने वाली हो।

ध्यान का मन्त्र—यह सारा ध्यान रूपकों पर ही अवलम्बित है। यह ऋषियों का अनुभव है कि रूपकों द्वारा ध्यान सुन्दर जँचता है और बड़ी गम्भीरता तक पहुँचता है। गायत्री का रूप श्वेतवर्ण का है अर्थात् जिनका ध्येय निर्मल है जैसे रक्तवर्ण तो युद्ध का शौर्य या सृष्टि की उत्पत्ति का, जीवन बढ़ाने का ध्येय सामने लाता है श्वेतवर्ण शान्ति ज्ञान, और निर्मलता का ध्यान प्रगट करता है। गौरी है।

समुद्दिष्टा—गायत्री का उद्देश्य स्पष्ट है और स्थिर है और उस पथ से ध्यान करने वाला कभी डिगता नहीं है (मतलब में सावधान है)। कौशेयवसना तथा—संसार की ओर से ध्यान हटा कर अद्वितीय ब्रह्म प्राप्ति की ओर लगानेवाली। तुच्छ सांसारिक कार्यों से ध्यान हटा कर ब्रह्म की ओर लगाने में गायत्री की प्रसन्नता है। कौशेय वस्त्रः—शान्त, तेज को और ब्रह्मानन्द को बतानेवाला है। जैसे फौजी लोग फौजी पोशाक में रहते हैं और कानूनी लोग कानूनी पोशाक में, वैसे ही गायत्री का कौशेय वस्त्र रहता है। गायत्री भक्त गायत्री को शुभ शान्त चिन्तन के वेश को धारण किये हुए ही देखता है।

श्वेतैः—गायत्री मन्त्र के द्वारा जिस व्यापक कला का प्रादुर्भाव होता है वह श्वेत—अर्थात् सात्त्विक रंग का है। विलेपनैः—अर्थात् सात्त्विक गंध का। पुष्पै—अर्थात् ऐसे वचनों का जो कि रूप, रस और गन्ध स्पर्श के सुन्दर प्रकार से पूर्ण हो और जिसमें (जिसके साहित्य में) सम्पूर्ण प्रकार के अलङ्कारों से विभूषित हो ऐसी गायत्री और उससे उत्पन्न संस्कृति है। हृदय को आल्हादित करने की शक्ति प्रकाशित करने वाले पुष्प हैं, अलङ्कार उसकी शोभा बढ़ाते हैं उस समूचे साहित्य के सार को पाने के लिये अक्ष और बीज है।

यहां अक्ष का अभिप्राय है. अर्थ की की धारा बतानेवाले मन्त्र और वाक्य। या तो आदित्य मण्डलस्था ब्रह्मलोकगताऽथवा। या तो आदित्य मण्डल को बताने वाली है व्यावहारिक जीवन के बारह भावों को सामने रखने वाली और ब्राह्मजीवन-आध्यात्मिक जीवन को बताने वाली है।

पद्मासना—इस भवसागर के संसार के कर्दम और भवसागर से उठा हुआ जो पद्म है अर्थात् सुन्दर से सुन्दर व्यवस्था, पद्म पर विराजमान है। इसका एकमात्र ही अस्तित्व शुभ करना ही है। इसमें बारह भाव हैं। (१) श्वेतवर्ण—तनु और आत्मभाव का वर्णन। (२) समुद्दिष्टा-मनोभाव। (३) कौशेयवसना—कर्मभाव। (४) श्वेतैः—श्वेत प्रधान है चतुर्थ भाव। विलेपनैः—विशेषतः श्वेत विलेपन, पञ्चमभाव। पुष्पैः-षष्ठ भाव। अलङ्कारैः—सप्तमभाव। आदित्यमण्डलस्था—अष्टम भाव। ब्रह्मलोकगता—नवमभाव। अक्षसूत्रधरा-दशमभाव पद्मासनगता-एकादश भाव। शुभा—द्वादश भाव।

ॐ मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै-
र्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम्।
गायत्रीं वरदाभयांकुशकशाशुभ्रं कपालं गुणं
शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे।

(देवी भागवत १२ स्क० ३ अ० १० श्लोक)

फिर गायत्री के आवाहन का विनियोग छोड़े।

गायत्री का आवाहन

ॐ तेजोऽसीतिदेवाऋषयो गायत्रीछन्दः शुक्रं दैवतं गायत्र्यावाहने विनियोगः।

नीचे लिखे मन्त्रों से गायत्री का आवाहन करे।

ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामाऽसि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि।

गायत्री का उपस्थान

ॐ गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदीचतुष्पद्यपदसि नहि पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परो रजसे ऽसावदो मा प्रापत्।

तेजोऽसि—नित्य तेज रूप हो, शुक्रमसि—सर्वगत रूप हो, अमृतमसि—अमृत धर्मा हो, धामनामाऽसि—धाम में पहुंचते ही अपना नाम प्रगट करती हो कि मैं गायत्री हूँ।

धाम नाम को समास से जोड़ा गया है। धाम में पहुंचते ही सद्यः अपना अन्वर्थनाम प्रगट करती हो कि मैं सर्वलोकों में ले जाने की सामर्थ्य रखती

प्रियं देवानाम्—इन्हीं गुणों के कारण सभी देवगण को प्रिय हो। अर्थात् कभी भी अमरत्व के द्वारा स्थान भ्रष्ट नहीं होती अचल हो परम-धाम में पहुंचती हो, सनातन हो, अपना नाम और यश सनातन रखती हो। सभी दिव्य कामों में गायत्री मन्त्र रूप में भगवती क्रियात्मक रहती है और धर्म की रक्षा करती है। किसी भी रूप में शत्रु से दबने वाली नहीं प्रत्येक समय देवगण के यज्ञों को पूर्ण रूप से बनाये रखती है। देवगण दूसरों से प्रेम करते हैं और देवगण को यह प्रेम करती है। देव यज्ञ का यह कभी भी लोप नहीं होने देती है।

इस प्रकार से धर्म संस्थापन बनाये रखती है। आत्मा के रूपक हैं दिव्य कर्म, पूर्व भव का जन्म, वर्तमान जन्म और भविष्य जन्म।

गायत्री हो, रक्षा करनेवाली हो, एकपदी हो एक ही मार्ग है हमने सविता का वरण कर लिया हैं वह उज्ज्वलता देनेवाला है। द्विपदी हो, त्रिपदी हो, हमारी बुद्धि को चलाती हो। चतुष्पदी हो—युग युग के लिये यह धर्म रहेगा। अपदसि—इसको जपनेवाले भक्त का रूप ही दिखता है स्वयं नहीं दीखती।

इसकी महिमा अपरम्पार है वह परोक्ष से रक्षा करती है। सप्तम पद है रज से पर और व्यापक रूप में हमारे सामने आती है और हम कहते हैं कि हे देवी जो तेरे सात पद हैं, वे चतुर्थ पद के ही विस्तार हैं। वह चौथे पद का ध्यान हम से न छुटे यही तेरे सप्तम पद में नतमस्तक हो हमारी प्रार्थना है। इस सतोगुणी पद का दर्शन मिलता रहे इसके लिये यह भी प्रार्थना है कि रजोगुण का पर्दा हमसे दूर हटे और साथ ही यह भी कि मृत्यु का जो तम है वह मुझे कभी न व्यापे।

गायत्रीशापविमोचनम्

ब्रह्मा, वशिष्ठ और विश्वामित्र ने गायत्री को शाप दिया, उस शाप निवृत्ति के लिये शाप विमोचन अवश्य करें।

ब्रह्मशापविमोचनम्

ओ३म् अस्य श्री ब्रह्मशापबिमोचनमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः भुक्तिमुक्तिप्रदा ब्रह्मशापविमोचनी गायत्री शक्तिर्देवता गायत्री छन्दः ब्रह्मशापविमोचने ।वनियोगः ॥

ओ३म् गायत्रीं ब्रह्मेत्युपासीत यद्रूपं ब्रह्मविदो विदुः, तां पश्यन्ति धीराः सुमनसा वाचामग्रतः। ओ३म् वेदान्तनाथाय विद्महे हिरण्यगर्भाय धीमहि तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात्। ओ३म् देवी गायत्री त्वं ब्रह्मशापाद्विमुक्ता भव।

वशिष्ठशापविमोचनम्

ॐ अस्य श्री वसिष्ठशापविमोचनमन्त्रस्य निग्रहानुग्रहकर्त्ता वसिष्ठ-ऋषिः वसिष्ठानुगृहीता गायत्री शक्तिर्देवता विश्वोद्भवा गायत्री छन्दः वसिष्ठशापविमोचनार्थं जपे विनियोगः ॥ मन्त्रः ॥ ओ३म् सोऽहमर्कमयं ज्योतिरहं शिवः आत्मज्योतिरहं शुक्रः सर्वज्योतिरसोऽस्म्यहम्। इत्युक्त्वा योनिमुद्रां प्रदर्श्य गायत्रीत्रयं पठित्वा ॥ (योनि मुद्रा दिखा कर तीन बार गायत्री जपे) ओ३म् देवी गायत्री त्वं वसिष्ठशापाद्विमुक्ता भव ॥

विश्वामित्रशापविमोचनम्

ओ३म् अस्य श्री विश्वामित्रशापविमोचनमन्त्रस्य नूतनसृष्टिकर्त्ता विश्वामित्र ऋषिः विश्वामित्रानुगृहीता गायत्रीशक्तिर्देवता वाग्देहा गायत्री छन्दः विश्वामित्रशापविमोचनार्थं जपे विनियोगः ॥ मन्त्रः ॥ ओ३म् गायत्रीं भजाम्यग्निमुखीं विश्वगर्भां यदुद्भवा देवाश्चक्रिरे विश्वसृष्टिं तां कल्याणीमिष्टकरीं प्रपद्ये। यन्मुखान्निःसृतोऽखिलवेदगर्भः ॥ शापयुक्ता तु गायत्री सफला न कदाचन। शापादुत्तारिता सातु भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥ प्रार्थना ॥ ओ३म् अहो देवि महादेवि सन्ध्ये विद्ये सरस्वति। अजरे अमरे चैव ब्रह्मयोनिर्नमोऽस्तु ते ॥ ब्रह्मशापाद्विमुक्ता भव। वशिष्ठशापाद्विमुक्ताभव ॥ विश्वामित्रशापाद्विमुक्ता भव ॥

प्रातः काले ब्रह्मरूपगायत्रीध्यानम्

ओ३म् बालां विद्यान्तु गायत्रीं लोहितां चतुराननाम्। रक्ताम्बरद्वयोपेतामक्षसूत्रकरां तथा ॥ कमण्डलुधरां देवीं हंसवाहनसंस्थिताम्। ब्रह्माणीं ब्रह्मदैवत्यां ब्रह्मलोकनिवासिनीम्। मन्त्रेणावाहयेद्देवीमायान्तीं सूर्यमण्डलात् ॥

ब्रह्मलोक में बसनेवाली, कन्या के सदृश, हंस पर बैठी हुई, लाल रंग, चार मुख और चार हाथवाली दो लाल वस्त्र (धोती और चोली) धारण किये, हाथों में रुद्राक्ष की माला, दण्ड, पुस्तक और कमण्डलु लिये सूर्य मण्डल से आती हुई गायत्री देवी का ध्यान करे।

मध्याह्नकाले विष्णुरूपगायत्री ध्यानम्

शास्त्रों में मध्याह्न में विष्णुरूपा का ध्यान लिखा है और मध्याह्न सन्ध्या के विनियोग में भी विष्णु ऋषि हैं। अतः विष्णुरूपा गायत्री का ध्यान करे।

ओ३म् मध्याह्ने विष्णुरूपां च तार्क्ष्यस्थां पीतवाससाम्।
युवतीं च यजुर्वेदां सूर्यमण्डलसंस्थिताम् ॥

सूर्यमण्डल में स्थित, युवावस्थावाली, श्री गरुडपर बैठी हुई, पीले वस्त्र धारण किये हुये, हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म लिये यजुर्वेद से युक्त गायत्री देवी का ध्यान करे।

सायंकाले शिवरूपगायत्रीध्यानम्

ओं३म् सायाह्ने शिवरूपाञ्च वृद्धां वृषभवाहिनीम्।
सूर्यमण्डलमध्यस्थां सामवेदसमायुताम् ॥

सूर्यमण्डल में स्थित, वृद्धावस्थावाली, बैल पर बैठी हुई हाथों में त्रिशूल, पाश तथा पात्र लिये हुए, सामवेद से युक्त गायत्री देवी का ध्यान करे।

गायत्री-हृदयम्

ओं अस्य श्रीगायत्रीहृदयस्य नारायणऋषिर्गायत्रीच्छन्दः परमेश्वरी गायत्री देवता गायत्रीहृदयजपे विनियोगः ॥ अथार्थन्यासः ॥ द्यौर्मूर्ध्नि-दैवतम्। दन्तपंक्तावश्विनौ। उभे सन्ध्ये चोष्ठौ। मुखमग्निः। जिह्वा सरस्वती। ग्रीवायां तु बृहस्पतिः। स्तनयोर्वसवोऽष्टौ। बाह्वोर्मरुतः। हृदये पर्जन्यः। आकाशमुदरम्। नाभावन्तरिक्षम्। कट्योरिन्द्राग्नी। जघने विज्ञानघनः

प्रजापतिः। कैलासमलये उरू। विश्वेदेवा जान्वोः। जंघायां कौशिकः। गुह्यमयने। उरू पितरः। पादौ पृथ्वी। वनस्पतयोऽङ्गुलीषु। ऋषयो रोमाणि। नखानि मुहूर्तानि। अस्थिषु ग्रहाः। असृङ्मांसं ऋतवः। सम्वत्सरा वै निमिषम्। अहोरात्रावादित्यश्चन्द्रमाः। प्रवरां दिव्यां गायत्रीं सहस्रनेत्रां शरणमहं प्रपद्ये। ओं तत्सवितुर्वरेण्याय नमः। ओं तत्पूर्वाजयाय नमः। तत्प्रातरादित्याय नमः। तत्प्रातरादित्यप्रतिष्ठायै नमः। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। सायं प्रातरधीयानो अपापो भवति। सर्वतीर्थेषु स्नातो भवति। सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति। अवाच्यवचनात्पूतो भवति। अभक्ष्यभक्षणात्पूतो भवति। अभोज्यभोजनात्पूतो भवति। अचोष्यचोषणात्पूतो भवति। असाध्यसाधनात्पूतो भवति। दुष्प्रतिग्रहशतसहस्रात्पूतो भवति। सर्वप्रतिग्रहात्पूतो भवति। पंक्तिदूषणात्पूतो भवति। अनृतवचनात्पूतो भवति। अथाऽब्रह्मचारी ब्रह्मचारी भवति। अनेन हृदयेनाधीतेन क्रतुसहस्रेणेष्टं भवति। षष्टिशतसहस्रगायत्र्या जप्यानि फलानि भवन्ति। अष्टौब्राह्मणान् सम्यग्ग्राहयेत्। अस्यसिद्धिर्भवति। य इदं नित्यमधीयानो ब्राह्मणः शुचिः सर्वपापः प्रमुच्यत इति। ब्रह्मलोके महीयते।

॥ इत्याह भगवान् श्रीनारायणः ॥

जप के आदि में गायत्रीहृदयका तथा अन्त में कवच का पाठ करके प्रातः सन्ध्या में जप करने से रात्रि के और सायं सन्ध्या में दिन के किये हुए पाप नष्ट होते हैं। इसलिये गायत्री हृदय और कवच का पाठ अवश्य करे।

जप के पूर्व की २४ मुद्रायें

सुमुखं सम्पुटं चैव विततं विस्तृतं तथा।
एकद्वित्रिमुखञ्चैव चतुःपञ्चमुखं तथा॥

षण्मुखाधोमुखञ्चैव व्यापकाञ्जलिकं तथा ।
शकटं यमपाशं च ग्रथितं चोन्मुखोन्मुखम् ॥
प्रलम्बं मुष्टिकं चैव मत्स्यकूर्मवराहकम् ।
सिंहाक्रान्तं महाक्रान्तं मुद्गरं पल्लवं तथा ॥
एता मुद्राश्चतुर्विंशज्जपादौ परिकीर्तिताः ।

(१) सुमुखम्—दोनों हाथों की अङ्गुलियों को थोड़ा मोड़कर आपस में मिलावें। (२) सम्पुटम्—दोनों हाथ को फुलाकर मिलावें। (३) विततम्—दोनों हाथों की हथेली आमने सामने करें। (४) विस्तृतम्—दोनों हाथों की अंगुलियां खोल हाथों को कुछ अधिक अलग करें। (५) द्विमुखम्—दोनों हाथों की कनिष्ठा को कनिष्ठो से और अनामिका को अनामिका से मिलावें। (६) त्रिमुखम्—दोनों मध्यमा को और मिलावें। (७) चतुर्मुखम्—दोनों तर्जनी को और मिलावें। (८) पञ्चमुखम्—दोनों अंगुष्ठों को और मिलावें। (९) षण्मुखम्—हाथ वैसे ही रखते हुए दोनों कनिष्ठा खोल दें। (१०) अधोमुखम्—उल्टे हाथों की अंगुलियों को मोड़ तथा मिलाकर नीचे की ओर करें। (११) व्यापकाञ्जलिम्—वैसे ही मिले हुए हाथों को शरीर की तरफ से घुमाकर सीधे करें। (१२) शकटम्—दोनों हाथों को उल्टा रख अंगूठे से अंगूठा मिलाकर तर्जनियों को सीधी रखते हुए मुट्ठी बांधे। (१३) यमपाशम्—तर्जनी से तर्जनी बांधकर दोनों मुट्ठी बांधे। (१४) ग्रन्थितम्—दोनों हाथ की अङ्गुलियों को आपस में गूंथे। (१५) उन्मुखोन्मुखम्—हाथों की पाँचों अङ्गुलियों को मिलाकर पहले बांये पर दक्षिण और फिर दक्षिण पर बांया हाथ रक्खें। (१६) प्रलम्बम्—अंगुलियों को कुछ मोड़ दोनों हाथों को उल्टाकर नीचे की ओर करें। (१७) मुष्टिकम्—दोनों अंगूठे ऊपर रखते हुए दोनों मुट्ठी बांधकर मिलावे। (१८) मत्स्य—

दक्षिण हाथ की पीठ पर वाम हाथ उल्टा रखकर दोनों अंगूठे हिलावे। (१६) कूर्म—सीधे बांये हाथ की मध्यमा अनामिका तथा कनिष्ठा मोड़कर उल्टे दाहिने हाथ की मध्यमा, अनामिका को उन तीनों अंगुलियों के नीचे देकर वांयी तर्जनी पर दाहिनी कनिष्ठा और बांये अंगूठे पर दाहिनी तर्जनी रक्खे। (२०) वाराहकम्—दाहिनी तर्जनी को अंगूठे से मिला दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में बांधे। (२१) सिंहाक्रान्तम्—दोनों हाथों को कानों के समीप ले जावे। (२२) महाक्रान्तम्—दोनों हाथों की अंगुलियों को कानों के पास करे। (२३) मुद्गरम्—मुट्ठी बांधे दाहिनी कुहनी बांयी हथेली पर रक्खे। (२४) पल्लवम्—दाहिनी हाथ की अंगुलियों को मुख के सम्मुख हिलावे।

गायत्री मन्त्र

नीचे लिखे गायत्री मन्त्र का करमाला पर जप करने से अधिक फल होता है। इसलिए करमाला पर भी अवश्य जप करे। करं सर्पफणाकारं कृत्वा तं तूर्ध्वमुद्रितम्, आनम्रमूर्ध्वमचलं प्रजपेत्प्राङ्मुखो द्विजः। अनामिका मध्यदेशादधो वामक्रमेण च तर्जनीमूलपर्यन्तं जपस्यैष क्रमः करे॥

ब्रह्मवैव० प्रकृति ख० ३१।१७-१६

हाथको सर्प के फन के समान करले। वह हाथ ऊर्ध्व मुख और ऊपर की ओर से कुछ मुद्रित हो (मुदा हो) उसे थोड़ा बहुत झुकाये स्थिर रक्खे। अनामिका के बिचले पर्व से आरम्भ करके नीचे और बांये होते हुये तर्जनी के मूलभागतक अंगूठे से स्पर्श पूर्वक जप करे। करमाला का यही क्रम है। गायत्री मन्त्र के २४ लक्ष जप के एक पुरश्चरण का अनुष्ठान करने से विपुल ऐश्वर्य, स्वर्ग तथा मोक्ष प्राप्त होता है। यदि स्वयं नहीं कर सके तो ब्राह्मणों द्वारा अवश्य करवाना चाहिए।

ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

ओं—परब्रह्म, भूः—तत्, भुवः—चित्, स्वः—आनन्द-स्वरूप, तत्—उस, सवितुः—जगत् के उत्पति स्थिति प्रलयकर्त्ता, देवस्य—स्वयं प्रकाश देवताके, वरेण्यं—सबके भजने योग्य, भर्गः—कल्याणकारी तेज का, धीमहि—ध्यान करते हैं, यः—जो (वह), न—हमारी, धियः—बुद्धिको धर्मादि शुभकर्मों में, प्रचोदयात्—प्रेरित करे। अर्थात् हम उस परब्रह्म सच्चिदानन्दस्वरूप जगत् के उत्पत्तिस्थिति प्रलयकर्त्ता स्वयं प्रकाश देवता के भजने योग्य कल्याणकारी तेज का ध्यान करते हैं। वह हमारी बुद्धि को धर्मादि शुभकार्यों में प्रेरित करे।

जप के बादकी ८ मुद्रायें

सुरभिर्ज्ञानवैराग्ये योनिः शङ्खोऽथ पङ्कजम् ।
लिङ्गं निर्वाणमुद्राष्टौ जपान्ते च प्रकल्पयेत् ॥

जप के बादकी ८ मुद्रा

सुरभिः—दोनों हाथों की अंगुलियां गूंथ कर बाएं हाथ की तर्जनी से दाहिने हाथ की मध्यमा, मध्यमा से तर्जनी, अनामिका से कनिष्ठा और से अनामिका अंगुली मिलावे ॥ १ ॥ ज्ञानम्—दाहिने हाथ की तर्जनी से अंगूठा मिलाकर हृदय में तथा इसी प्रकार बांया हाथ बांयें गोड़े पर सीधा खे ॥ २ ॥ वैराग्यम्—दोनों तर्जनियों से अंगूठा मिलाकर गोड़ों पर सीधा रखे ॥ ३ ॥ योनिः-दोनों मध्यमाओंके नीचे से बांयी तर्जनीके ऊपर दाहिनी अनामिका और दाहिनी तर्जनी पर बांयी अनामिका रख दोनों तर्जनियों से बांध दोनों मध्यमाओं को सीधा करें पश्चात् दोनों अंगूठे मध्यमाओं पर रक्खे ॥ ४ ॥ शंख—बांए अगूंठे को दाहिनी मुट्ठीमें बाँध दाहिने अँगूठे

से बांयी अंगुलियों को मिलावे ॥ ५ ॥ पङ्कजम्—दोनों हाथों के अंगूठे और अंगुलियों को मिलाकर ऊपर की ओर करे ॥ ६ ॥ लिङ्गम्—दाहिने अंगूठे को सीधा करते हुये दोनों हाथ की अंगुलियों को गूंथ कर बांया अगठे को दाहिने अंगूठे की जड़ के ऊपर रक्खे ॥ ७ ॥ निर्वाणम्—उल्टे बांये हाथ पर दाहिना हाथ सीधा रख अंगुलियों को परस्पर गूँथ दोनों हाथ अपनी-अपनी तरफ से घुमा दोनों तर्जनीको सीधे कान के समीप करे ॥८॥

गायत्री कवचम्

ओं अस्य श्री गायत्रीकवचस्य ब्रह्माऋषिर्गायत्रीच्छन्दो गायत्री देवता ओं भूः बीजम् भुवः शक्ति स्वः कीलम् गायत्रीप्रीत्यर्थं जपे निनियोगः ॥ अथ ध्यानम् ॥ पञ्चवक्त्रां दशभुजां सूर्यकोटिसमप्रभाम् ॥ सावित्रीं ब्रह्मवरदों चन्द्रकोटिसुशीतलाम् । त्रिनेत्रां सितवक्त्रां च मुक्ताहारविराजिताम् । वराभयाङ्कुशकराहेमपात्राक्षमालिकाः ॥ शङ्खचक्राब्जयुगलं कराभ्यां दधतीं पराम् । सितपङ्कजसंस्थां च हंसारूढा सुखस्मिताम् । ध्यात्वैवं मानसाम्भोजेगायत्रीकवचं जपेत् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ विश्वामित्र महाप्राज्ञ गायत्री कवचं शृणु । यस्य विज्ञानमात्रेण त्रैलोक्यं वशयेत्क्षणात् ॥ १ ॥ सावित्री मे शिरः पातु शिखायाममृतेश्वरी । ललाटं ब्रह्मदैवत्या भ्रुवौ मे पातु वैष्णवी ॥ २ ॥ कर्णौ मे पातु रुद्राणी सूर्या सावित्रिकाऽम्बिके । गायत्री वदनं पातु शारदा दशनच्छदौ ॥ ३ ॥ द्विजान् यज्ञप्रिया पातु रसनायां सरस्वती । सांख्यायनी नासिकां मे कपोलौ चन्द्रहासिनी ॥ ४ ॥ चिबुकं वेदगर्भा च कण्ठं पात्वघनाशिनी । स्तनौ मे पातु इन्द्राणी हृदयं ब्रह्मवादिनी ॥ ५ उदरं विश्वभोक्त्री च नाभौ पातु सुरप्रिया । जघनं नारसिंही च पृष्ठं ब्रह्माण्डधारिणी ॥ ६ ॥ पार्श्वौ मे पातु पद्माक्षी गुह्यं गोगोप्त्रिकाऽवतु । ऊर्वोरोंकाररूपा च जान्वोः सन्ध्यात्मिकाऽवतु ॥ ७ ॥ जंघयोः पातु अक्षोभ्या

गुल्फयोर्ब्रह्मशीर्षका । सूर्यापदद्वयं पातु चन्द्रा पादांगुलीषु च ॥ ८ ॥ सर्वाङ्गं वेदजननी पातु मे सर्वदाऽनघा । इत्येतत् कवचं ब्रह्मन् ! गायत्र्याः सर्व-पावनम् । पुण्यं पवित्रं पापघ्नं सर्वरोगनिवारणम् ॥ ९ ॥ त्रिसन्ध्यं यः पठेद्वि-द्वान् सर्वान् कामानवाप्नुयात् । सर्वशास्त्रार्थतत्वज्ञः स भवेद्वेदवित्तमः ॥१०॥ सर्वयज्ञफलं प्राप्य ब्रह्मान्ते समवाप्नुयात् । प्राप्नोति जपमात्रेण पुरुषार्थां श्चतुर्विधान् ॥ ११ ॥

श्री विश्वामित्र संहितोक्तं गायत्रीकवचं समाप्तम् ॥

गायत्री तर्पणम्

(केवल प्रातः सन्ध्या में किया जाय)

ॐ गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिः सविता देवता गायत्री तर्पणे विनियोगः । ॐ भूः ऋग्वेदपुरुषं तर्पयामि । ॐ भुवः यजुर्वेदपुरुषं त० । ॐ स्वः साम-वेदपुरुषं त० । ॐ महः अथर्ववेदपुरुषं त० । ॐ जनः इतिहास पुराण-पुरुषं त० । ॐ तपः सर्वाङ्गं पुरुषं त० । ॐ सत्यं सत्यलोकपुरुषं त० । ॐ भूः भूर्लोकपुरुषं त० । ॐ भुवः भुवर्लोकपुरुषं त० । ॐ स्वः स्वर्लोक-पुरुषं त० । ॐ भूः एकपदां गायत्रीं त० । ॐ भुः द्विपदां गायत्रीं त० । ॐ स्वः त्रिपदां गायत्रीं त० । ॐ भूर्भुवः स्वः चतुष्पदां गायत्रीं त० ॐ उषसीं त० । ॐ गायत्रीं त० । ॐ सावित्रीं त० । ॐ सरस्वती त० - ॐ वेदमातरं त० । ओं पृथिवीं त० । ॐ अजां त० । ॐ कौशिकीं त० । ॐ सांकृतिं त० । ॐसर्वजितां त० । ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु ॥

प्रदक्षिणा-मन्त्र

यान कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च ।
तानि तानि प्रणश्यन्तु (न्ति) प्रदक्षिणपदे पदे ॥

क्षमा-प्रार्थना

यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनञ्च यद्भवेत्।
तत्सर्वं क्षम्यतां देवि ! प्रसीद परमेश्वरि ॥

विसर्जनम्

ओं उत्तमे शिखरे देवि! भूम्यां पर्वतमूर्द्धनि।
गायत्रिच्छन्दसां मातर्गच्छ देवि! यथासुखम् ॥

भगवति देवि स्वस्थानं गच्छ, कृतेनानेन सन्ध्याख्येन कर्मणा सूर्याधिष्ठात्री गायत्री देवता प्रीयतां न मम।

पृथ्वीपर सुमेरु पवत के उत्तम शिखर पर बसनेवाली, हे वेद माता गायत्री देवि! आप सुखसे पधारिये। इस सन्ध्या कर्म के करने से सूर्याधिष्ठात्री भगवती गायत्री देवता प्रसन्न हों मेरे लिये नहीं। सन्ध्या के पश्चात् बचे हुए जल को फेंक देवे। जपादि समाप्त होने के बाद आसन के नीचे जल छोडकर उस जल को ललाट में लगावे।

देवर्षि पितृ तर्पण

जिन महानुभावों के माता-पिता जीवित न हों उन्हें इस गृहस्थरूपी बागवाड़ी के पूर्ण विकास के लिये उत्तरदायी माता पिता आदि पितृकुल और नाना नानी आदि मातृकुल की तीन पीढ़ियों का स्मरणकर पितृरूपी जनार्दनको प्रीणन करना चाहिये। आत्मा अविनाशी है आत्मा के साथ भावना बराबर रहती है। तत्त्वों से निर्मित यह मानव शरीर अन्त में तत्त्वों में ही समा जाता है। अतः वह तत्त्वरूप से हमारे कल्याण की कामना करते हैं। उनका हमारा अनादि सम्बन्ध इतना घनिष्ठ बना रहता है कि तत्त्व रूप में भी उनकी भावना निरन्तर हमें फूला फला देखने

की रहती है। हम जो नित्य तर्पण एवं समय समय पर पित्रेश्वरों की पूजा श्राद्धादिके रूप में करते हैं वह तत्त्वों की पूजा है। शास्त्रकार कहते हैं पिता वसु (वायु) रूप, पितामह रुद्र (जल) रूप और प्रपितामह आदित्य (सूर्य) रूप है अर्थात् (वायु) जल, और सूर्य, रूप होकर तत्त्व रूप पित्रेश्वर हमारी सर्वदा रक्षा करते रहते हैं। वसून्वदन्ति पितॄन्रुद्रांश्चैव पितामहान्। प्रपितामहांस्तथाऽऽदित्यानित्येवं वैदिकी श्रुतिः ॥ ३ ॥ मत्स्य पु० १६ अ०

गार्हस्थ्याश्रमनेपथ्यं पथ्यं पैतामहं महत्। संसार—ताप-सन्तप्तावयवामृतशीकरम् ॥ अपत्यं पतताम्पोतं बहुक्लेश महार्णवे ॥ स्कन्द० काशीखण्ड पूर्वार्द्ध ३२।११-१२

इस संसार में बहुत क्लेश एवं दुःख रूपी सागरमें केवल पुत्र ही गृहस्थाश्रम का लीला स्थान एवं पूर्वजों के लिये महान् पथ्य तथा संसार में आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तापों से बुरी तरह सन्तप्त (दुःखी) अंगोंवाले पितरों के लिये अमृत की बूंद का काम करनेवाला है और भवसागर में डूबते हुओं के लिये बचाने को समुद्रयान है। मा बाप पुत्र बालक की इसीलिये योग्यता पूर्वक पालना करते हैं कि हमारे और्ध्व देहिक कार्यों को वह करे। जिससे किसी प्रकार भवसागर में डूबते उतराते उनका वह उद्धार करे।

इसे सूर्योदय से आधे पहर तक अमृत रूप में पित्रेश्वरों को मिले एतदर्थ सन्ध्या गायत्री जप के बादमें कर अक्षय्य पुण्य लाभ करना चाहिये।

देवतीर्थ—अंगुलियों का अग्रभाग, कायतीर्थ—कनिष्ठा का मूल, पितृतीर्थ—तर्जनी का मूल, ब्रह्मतीर्थ—अंगूठे का मूल, अग्नितीर्थ-दाहिनी हथेली का मूल।

पूर्व की ओर मुंह कर बैठ दूसरा वस्त्र ले, आचमन कर, दो कुश की पवित्री दाहिने तथा तीन की बांये हाथ की अनामिका के मूल में धारण

करे। तीन कुशाओं को सीधे बांटकर ग्रन्थी लगा कुशाओं के अग्रभाग को पूर्व में रखते हुए दाहिने हाथ में जलादि लेकर सङ्कल्प करे।

"ॐ तत्सदद्य श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीय परार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलि प्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भारतखण्डे बौद्धावतारे आर्यावर्तैक-देशान्तर्गत (अमुक) देशे (अमुक) पुण्यक्षेत्रे (अमुक) ग्रामे, नगरे अमुक संख्याके विक्रम सम्वत्सरे, अमुक नामके सम्वत्सरे अमुकायने, अमुक ऋतौ अमुक मासे, अमुक पक्षे, अमुक वासरे, (अमुक) गोत्रोत्पन्नः, अमुकनामाऽहं श्रुति-स्मृति पुराणोक्त फल प्राप्त्यर्थं देवर्षिमनुष्यपितृतर्पणं करिष्ये" कहकर जल छोड़ दे।

आवाहन

ब्रह्मादयः सुराः सर्वे ऋषयः सनकादयः।
आगच्छन्तु महाभागा ब्रह्माण्डोदरवर्तिनः॥

देव-तर्पण

अंगुलियों के अग्रभाग तथा कुशाओं के अग्रभाग से चावल सहित प्रत्येक को एक-एक अञ्जलि देवें।

ओं ब्रह्मातृप्यताम् १। ओं विष्णुस्तृप्यताम् १। ओं रुद्रस्यतृप्यताम् १। ओं प्रजापतिस्तृप्यताम् १। ओं देवास्तृप्यन्ताम् १। ओं ऋषयस्यतृप्यन्ताम् १। ओं पुराणाचार्यास्तृप्यन्ताम् १। ओं गन्धर्वास्तृप्यन्ताम १। ओं इतराचार्यास्तृप्य-न्ताम् १।ओंसम्वत्सरः सावयवस्तृप्यताम् १। ओंदेव्यस्यतृप्यन्ताम् १।ओंअप्स-रसस्तृप्यन्ताम् १। ओं देवानुगास्तृप्यन्ताम् १। ओं नागास्तृप्यन्ताम् १। ओं सागरास्तृप्यन्ताम् १। ओं पर्वतास्तृप्यन्ताम् १। ओं सरितस्तृप्यन्ताम् १। ओं मनुष्यास्तृप्यन्ताम् १। ओं यक्षास्तृप्यन्ताम्। ओं रक्षांसितृप्यन्ताम् १।

ओं पिशाचास्तृप्यन्ताम् १। ओं सुपर्णास्तृप्यन्ताम् १। ओं भूतानितृप्यन्ताम् १। ओं पशवस्तृप्यन्ताम १। ओं वनस्पतयस्तृप्यन्ताम। ओं औषधयस्तृप्यन्ताम् १। ओं भूतग्रामश्चतुर्विधस्तृप्यताम् १।

ऋषि तर्पण

(ऋषियों को भी उसी प्रकार देवे)

ॐ मरीचिस्तृप्यताम् १ ॐ अत्रिस्तृप्यताम् १। ॐ अङ्गिरास्तृप्यताम् १। ॐ पुलस्त्यस्तृप्यताम् १। ॐ पुलहस्तृप्यताम् १। ॐ क्रतुस्तृप्यताम् १। ॐ प्रचेतास्तृप्यताम् १। ॐ वसिष्ठस्तृप्यताम् १। ॐ भृगुस्तृप्यताम् १। ॐ नारदस्तृप्यताम् १। ॐ ततः उत्तराभिमुखः कण्ठीकृत्वा ॥

मनुष्य-तर्पण

उत्तराभिमुख हो जनेऊ तथा गमछा को कण्ठीकर "कायतीर्थ" कनिष्ठा के मूल तथा कुशाओं के मध्य से जौ सहित प्रत्येक को दो दो अञ्जलि देवें।

ॐ सनकस्तृप्यताम् २। ॐ सनन्दनस्तृप्यताम् २। ॐ सनातनस्तृप्यताम २। ॐ कपिलस्तृप्यताम् २। ॐ आसुरिस्तृप्यताम् २। ॐ बोढुस्तृप्यताम् २। ॐ पंचशिखस्तृप्यताम् २। ततोऽपसव्यं दक्षिणाभिमुखः पातितवामजानुः ॥

पितृ-तर्पण

दक्षिणाभिमुख हो बांया घुटना मोड़ अपसव्य हो—अर्थात् जनेऊ तथा अंगोछा को दाहिने कन्धे पर कर, पितृ तीर्थ तर्जनी के मूल तथा कुशा के भाग और मूल से तिल सहित प्रत्येक नाम से ३-३ अञ्जलि दक्षिण की ओर मुख कर देवे।

ॐ कव्यवाट् तृप्यतामिदं तिलोदकं तस्मै स्वधा ३। ॐ अनलस्ततृप्यतामिदं तिलोदकं तस्मै स्वधा ३। ॐ सोमस्तृप्यतामिदं तिलोदकं तस्मै स्वधा ३।

ओं यमस्तृप्यतामिदं तिलोदकं तस्मै स्वधा ३। ओं अर्यमातृप्यतामिदं तिलोदकं तस्मै स्वधा ३। ओं अग्निष्वात्तास्तृप्यन्तामिदं तिलोदकं तेभ्यः स्वधा ३। ओं सोमपास्तृप्यन्तामिदं तिलोदकं तेभ्यः स्वधा ३। ओं बर्हिषदस्तृप्यन्तामिदं तिलोदकं तेभ्यः स्वधा ३।

१४ यमों को भी इसी प्रकार तीन-तीन अञ्जलि देवें।

ओं यमाय नमः ३। ओं धर्मराजाय नमः ३। ओं मृत्यवे नमः ३। ओं अन्तकाय नमः ३ ओं वैवस्वताय नमः ३। ओं कालाय नमः ३। ओं सर्वभूतक्षयाय नमः ३। ओं औदुम्बराय नमः ओं दध्नाय नमः ३। ओं नीलाय नमः ३। ओं परमेष्ठिने नमः ३। ओं वृकोदराय नमः ३। ओं चित्राय नमः ३। ओं चित्रगुप्ताय नमः ३।

पितृआवाहन के लिये नीचे लिखे वाक्योंसे एक अञ्जलि देवें।

ओं आगच्छन्तु मे पितर इमं गृह्णन्त्वपोऽञ्जलिम् ॥

नीचे लिखे वेद-मन्त्र यदि शुद्ध उच्चारण न कर सकें तो केवल "ओं अद्य अमुक सगोत्रः" से बोलकर प्रत्येक को तीन तीन अञ्जलि देवें "अमुक" शब्द तथा पितरों की उपाधि के लिये सङ्कल्प करें।

ओं उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः। असुंय्य ईयुर वृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ ओं अद्य अमुक गोत्रः अस्मत्पिता अमुक वसुस्वरूपस्तृप्यतामिदं तिलोदकं तस्मै स्वधा॥ (पिता को पहली अञ्जलि देवें) ओं अङ्गिरसो नः पितरो न वग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः तेषां वयथं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम॥ ओं अद्य अमुक गोत्रः अस्मत्पिता अमुक वसुस्वरूपस्तृप्यतामिदं तिलोदकं तस्मै स्वधा (दूसरी अंजलि देवें) ओं आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वाताः पथिभिर्देवयानैः अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ओं अद्य अमुक गोत्रः अस्मत्पिता अमुक वसुस्वरूपस्तृप्यतामिदं तिलोदकं तस्मै स्वधा॥

(तीसरी अञ्जलि देवें)। ओं ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्। स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन्॥ ओं अद्य अमुक गोत्रः अस्मत्पितामहः अमुक रुद्रस्वरूपस्तृप्यतामिदं तिलोदकं तस्मै स्वधा॥ (दादा को पहली अञ्जलि देवें)। ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। अक्षन्न पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम्॥ ओं अद्य अमुक गोत्र अस्मत्पितामहः अमुक रुद्रस्वरूपस्तृप्यतामिदं तिलोदकं तस्मै स्वधा॥ (दूसरी अञ्जलि देवें) ओं ये चेह पितरो ये च नेह यांश्च विद्मयां उ च न प्रविद्म। त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञꣳ सुकृतञ्जुषस्व। ओं अद्य अमुक गोत्रः अस्मत्पितामह अमुक रुद्रस्वरूपस्तृप्यतामिदंतिलोदकंतस्मै स्वधा॥ (तीसरी अञ्जलि देवें)। ओं मधुव्वाता ऋताय ते मधु क्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥ ओं अद्य अमुक गोत्रः अस्मत्प्रपितामहः अमुक आदित्यस्वरूपस्तृप्यतामिदं तिलोदकं तस्मै स्वधा॥ (परदादा को पहली अञ्जलि देवें)। ओं मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रजः मधुद्यौरस्तु नः पिता॥ ओं अद्य अमुक गोत्रः अस्मत्प्रपितामहः अमुक आदित्यस्वरूपस्तृप्यतामिदं तिलोदकं तस्मै स्वधा॥ (दूसरी अञ्जलि देवें) ओं मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमां २ अस्तुसूर्यः माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥ ओं अद्य अमुक गोत्रः अस्मत्प्रपितामहः अमुक आदित्यस्वरूपस्तृप्यतामिदं तिलोदकं तस्मै स्वधा (तीसरी अञ्जलि देवें)। पिता-वसु, दादा रुद्र और परदादा-आदित्य (वायुपु०)

नीचे लिखे वाक्य से बोलकर एक एक अंजलि देवें।

ओंतृप्यध्वम्। ओं तृप्यध्वम्। ओं तृप्यध्वम्॥

माता दादी और परदादी को तीन तीन अंजलि देवें।

ओंअद्य अमुक गोत्राऽस्मन्माता अमुक नाम्नीदेवी गायत्रीस्वरूपिणीतृप्यतामिदं तिलोदकं तस्यै स्वधा ३॥ (माता)। ओं अद्य अमुक गोत्राऽ-

स्मत्पितामही अमुकदेवी; सावित्री स्वरूपिणी तृप्यतामिदं तिलोदकं तस्यै स्वधा ३ ॥ (दादी)। ओं अद्य अमुक गोत्रास्मत्प्रपितामही अमुकदेवी सरस्वतीस्वरूपिणी तृप्यतामिदं तिलोदकं तस्यै स्वधा ३ ॥ (परदादी)।

नीचे लिखा मन्त्र प्रत्येक बार बोलकर नाना को तीन अंजलि देवें।

ओं नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मैतद्वः पितरो वास आधत्त ॥ ओं अद्य अमुक गोत्रोऽस्मन्मातामहः अमुकनाम अग्निस्वरूपस्तृप्यतामिदं तिलोदकं तस्मै स्वधा ३ ॥ (नाना)।

नीचे लिखा मन्त्र प्रत्येक बार बोलकर परनाना को तीन अंजलि देवें

ओं नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घरोाय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मैतद्वः पितरो वास आधत्त। ओंअद्य अमुक गोत्रोऽस्मत्प्रमातामहः अमुकनाम वरुणस्वरूपस्तृप्यतामिदं तिलोदकं तस्मै स्वधा ३ ॥ (परनाना)

नीचे लिखा मन्त्र प्रत्येक बार बोलकर वृद्ध परनाना को तीन अंजलि देवें।

ओं नमो वः पितरो रसाय नमो व पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मैतद्वः पितरो वास आधत्त ॥ ओं अद्य अमुक गोत्रोऽस्मत्वृद्धप्रमातामहः अमुकनाम प्रजापतिस्वरूपस्तृप्यतामिदं त्रिलोदकं तस्मै स्वधा ३ ॥ (वृद्धपरनाना)

ये तीनों क्रमशः अग्नि, वरुण और प्रजापति हैं।

नानी परनानी और वृद्ध परनानी को तीन तीन अञ्जलि देवें।

ओंअद्य अमुक गोत्राऽस्मन्मातामही अमुकनाम्नी देवी गंगारूपा तृप्यतामिदं तिलोदकं तस्यै स्वधा ३ ॥ (नानी)

ओंअद्य अमुक गोत्राऽस्मत्प्रमातामही अमुकनाम्नीदेवी यमुनारूपातृप्यतामिदं त्रिलोदकं तस्यै स्वधा ३ ॥ (परनानी)

ओं अद्य अमुक गोत्राऽस्मद्वृद्धप्रमातामही अमुक नाम्नी देवी सरस्वतीरूपातृप्यतामिदं तिलोदकं तस्यै स्वधा ३ ॥ (वृद्धपरनानी) ।

नीचे लिखे स्वर्गीय सम्बन्धियों का गोत्र, सम्बन्ध तथा नाम उच्चारणकर प्रत्येक को तीन तीन अंजलि देवें। पुरुष हों तो अमुक सगोत्रः सपत्नीकः गुरु, पितृव्य आदि जोड़ें। गुरु, दादा, वृद्धदादा, ताऊ, चाचा, भ्राता, पुत्र, श्वसुर, मामा और जीजा फूफा आदि तथा उनलोगों की पत्नी, मौसी बहिन और पुत्री आदि को अंजलि देवें। पश्चात् नीचे लिखे मंत्र से जलधारा छोड़ें।

ओं देवासुरास्तथा यक्षा नागा गन्धर्वराक्षसाः। पिशाचा गुह्यकाः सिद्धाः कूष्माण्डास्तरवः खगाः ॥ जलेचरा भूनिलया वाय्वाधाराश्च जन्तवः। तृप्तिमेते प्रयान्त्वाशु मद्दत्तेनाऽम्बुनाखिलाः। नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः। तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया॥ येऽबान्धवाऽबान्धवाश्च येन्यजन्मनि बान्धवाः। ते तृप्तिमखिला यान्तु यश्चास्मत्तोऽभिवांछति ॥ ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः। तेषां हि दत्तमक्षय्यमिदमस्तु तिलोदकम्। आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः। तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः। अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनाम्। आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकम्।

वस्त्र निष्पीडन

"अंगोछे की" चार तह कर उसमें तिल तथा जल छोड़कर नीचे लिखे मन्त्र से जल के बाहर बांयी ओर पृथ्वी पर निचोड़ें।

ये के चास्मत्कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः
ते तृप्यन्तु (गृह्णन्तु) मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम् ॥

हाथ में बंटी हुई जो कुशा हैं उन्हें खोलकर त्यागें किन्तु पवित्री नहीं त्यागें। पश्चात् पूर्वाभिमुख तथा सव्य हो आचमन कर नीचे लिखे मन्त्र से भीष्मपितामह को एक अंजलि देवें।

भीष्मः शान्तनवो वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
अद्भिरद्भिरवाप्नोतु पुत्रपौत्रोचितां क्रियाम् ॥
वैयाघ्रपदगोत्राय सांकृतिप्रवराय च।
अपुत्राय ददाम्येतज्जलं भीष्माय वर्मणे ॥

नीचे लिखे प्रत्येक नाम से एक एक अंजलि देवे।

ओं ब्रह्मणे नमः। ओं विष्णवे नमः। ओं रुद्राय नमः। ओं सूर्याय नमः। ओं दिग्भ्यो नमः। ओं दिग्देवताभ्यो नमः। ओं अग्नये नमः। ओं पृथिव्यै नमः। ओं ओषधिभ्यो नमः। ओं वाचे नमः। ओं वाचपस्तये नयः। ओं मित्राय नमः। ओं महद्भ्यो नमः। ओं अद्भ्यो नमः। ओं अपांपतये नमः ओं वरुणाय नमः।

नीचे लिखे मन्त्र से सूर्य को अर्घ्य दे पश्चात् जलको नेत्रों में लगावें।

ओं नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे। जगत्सवित्रेशुचये नमस्ते कर्मदायिने।

सूर्यार्घ्य का विशेष विधान

उसके बाद भगवान् सूर्य को अपने आसन के आगे पद्म बनाकर पुष्प अक्षत (चावल) और जल में लाल चन्दन मिलाकर नीचे के मन्त्रों से सूर्यनारायण के नाम के उच्चारण पूर्वक अर्घ्य दें।

ततश्चाचम्य विधिवदालिखेत्पद्ममग्रतः। अक्षताभिः सपुष्पाभिः सजलारुणचन्दनम्। अर्घ्यं दद्यात्प्रयत्येन सूर्य्यनामानि कीर्तयेत्। (म० पु० १०१।२५)

"नमस्ते विष्णुरूपाय नमोविष्णुमुखायवै। सहस्ररश्मये नित्यं नमस्ते सर्वतेजसे ॥ नमस्ते शिव सर्वेश नमस्ते सर्ववत्सल। जगत्स्वामिन्नमस्तेऽस्तु दिव्य-चन्दन-भूषित ॥ पद्मासननमस्तेऽस्तु कुण्डलांगदभूषित। नमस्ते सर्वलोकेश ! जगत्सर्वं विबोधसे ॥ सुकृतं दुष्कृतं चैव सर्वं पश्यसि सर्वग। सत्यदेव नमस्तेऽस्तु प्रसीद मम भास्कर ॥ दिवाकर नमस्तेऽस्तु प्रभाकर नमोऽस्तुते। मत्स्यपुराण १०१।२६-२६

एवं सूर्यं नमस्कृत्य त्रिःकृत्वाऽथ प्रदक्षिणम्।
द्विजं गां कांचनं स्पृष्ट्वा ततो विष्णुगृहं व्रजेत् ॥

इस प्रकार सूर्य को नमस्कार कर तीन बार प्रदक्षिणा करे और द्विज, गौ तथा सुवर्ण की वस्तु का स्पर्श कर फिर भगवान् विष्णु के मन्दिर में दर्शनार्थ जावें।

नीचे लिखे मन्त्र से मुख का मार्जन करे।

ॐ संवर्चसा पयसा संतनूभिरगन्महिमनसासथं शिवेन। त्वष्टासुदत्रो विदधातुरायोनुमार्ष्टुतन्वी यद्विलिष्टम्। इति जपन् करद्वयेनमुखं संस्पृश्य।

नीचे लिखे मंन्त्र से पितृ विसर्जन करें किन्तु तीर्थों में नहीं करें।

ओं देवागातु विदोगातुं विःवागातुमित मनसस्पत। इमं देवयज्ञथंस्वाहा वातेधाः ॥ "कृतेनानेन तर्पणेन पितृरूपी जनार्दनः प्रीयताम्" ॥

कर्म पूर्त्यर्थं विष्णुं स्मरेत्।

क्षमा प्रार्थना—प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्। स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः।

——

देवीभागवतोक्तम्

गायत्रीमन्त्रकवचवर्णनम्

नारद उवाच

स्वामिन्सर्वजगन्नाथ ! संशयोऽस्ति ममप्रभो ! चतुःषष्टिकलाभिज्ञ पातकाद्योगविद्वर । मुच्यतेकेन पुण्येन ब्रह्मरूपः कथं भवेत् । देहश्च देवतारूपो मन्त्ररूपो विशेषतः ॥२॥

कर्म तच्छ्रोतुमिच्छामि न्यासञ्च विधिपूर्वकम् ।
ऋषिश्छन्दोऽधिदैवञ्च ध्यानञ्च विधिवत्प्रभो !॥३॥

श्रीनारायण उवाच

अस्त्येकं परमं गुह्यं गायत्रीकवचं तथा । पठनाद्धारणान्मर्त्यः सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति देवीरूपश्च जायते । गायत्रीकवचस्याऽस्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । ऋषयोऋग्यजुःसामाऽथर्वश्छन्दांसि नारद !॥ ब्रह्मरूपादेवतोक्ता गायत्री परमाकला । तद्बीजंभर्गइत्येषा शक्तिरुक्तामनीषिभिः । कीलकञ्चधियः प्रोक्तंमोक्षार्थेविनियोजनम् ॥

चतुर्भिर्हृदयं प्रोक्तं त्रिभिर्वर्णैः शिरः स्मृतम् ।
चतुर्भिः स्याच्छिखा पश्चात्त्रिभिस्तु कवचं स्मृतम् ॥८॥

चतुर्भिर्नेत्रमुद्दिष्टं चतुर्भिः स्यात्तदस्त्रकम् । अथध्यानंप्रवक्ष्यामिसाधकाभीष्टदायकम् ॥

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै-
र्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम् ।
गायत्रीं वरदाभयाऽङ्कुशकशा शुभ्रं कपालंगुणं
शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे ॥१०॥

गायत्री पूर्वतः पातु सावित्री पातु दक्षिणे। ब्रह्मसन्ध्यातु मेपश्चादुत्तरायां-सरस्वती पार्वतीमे मे दिशं रक्षेत्पावकी जलशायिनी। यातुधानी दिशं रक्षेद्यातुधानभयङ्करी। पावमानी दिशं रक्षेत्पवमानविलासिनी। दिशं रौद्री च मे पातुरुद्राणी रुद्ररूपिणी। ऊर्ध्वंब्रह्माणि (णी) मेरक्षेदधस्ताद्वैष्णवीतथा। एवं दशदिशोरक्षेत्सर्वाङ्गं भुवनेश्वरी। तत्पदं पातुमे पादौ जङ्घेमे सवितुः पदम्। वरेण्यं कटिदेशेतु नाभिं भर्गस्तथैव च। देवस्य मे तद्धृदयं धीमहीति च गल्लयोः। धियः पदञ्च मे नेत्रेयःपदंमे ललाटकम्। नः पातु मे पदं मूर्ध्नि शिखायांमेप्रचोदयात्। तत्पदंपातुमूर्धानंसकारःपातुभालकम्। चक्षषीतु विकारार्णस्तुकारस्तु कपोलयोः। नासापुटं वकरार्णोरिकारस्तुमुखे तथा णिकार ऊर्ध्वमोष्ठन्तुयकारस्त्वधरोष्ठकम्। आस्यमध्येभकारार्णोगोंकारश्चि-बुकेतथा। देकारःकण्ठदेशेतु वकारःस्कन्धदेशकम्। स्यकारोदक्षिणंहस्तंधीकारो-वामहस्तकम् ॥२८॥

मकारो हृदयं रक्षेद्धिकार उदरे तथा।
धिकारो नाभिदेशे तु योकारस्तु कटिं तथा ॥२९॥

गुह्यं रक्षतु योंकार ऊरू द्वौ नः पदाक्षरम्। प्रकारोजानुनीरक्षेच्चोकारोजङ्घ-देशकम्॥ दकारं गुल्फदेशे तु यकारः पदयुग्मकम्। तकारव्यञ्जनञ्चैव सर्वाङ्गम्मे सदाऽवतु॥ इदं तु कवचं दिव्यं बाधाशतविनाशनम्। चतुः षष्टिकलाविद्यादायकं मोक्षकारकम् मुच्यते सर्वपापेभ्यः परंब्रह्माऽधिगच्छति। पठनाच्छ्रवणाद्वाऽपिगोसहस्रफलं लभेत् ॥२५॥

इति श्रीदेवीभावतोक्तं गायत्रीमन्त्र कवचं सम्पूर्णम्।

देवीभागवतोक्तम्

श्रीगायत्रीस्तोत्रवर्णनम्

नारद उवाच

भक्तानुकम्पिन्सर्वज्ञ ! हृदयंपापनाशनम् । गायत्र्याःकथितंतस्माद्गायत्र्याः स्तोत्रमारय १।

श्रीनारायण उवाच

आदिशक्तेजगन्मातर्भक्तानुग्रहकारिणि । सर्वत्रव्यापिकेऽनन्तेश्रीसन्ध्येतेनमोऽस्तुते । त्वमेवसन्ध्यागायत्रीसावित्रीचसरस्वती । ब्राह्मीचवैष्णवीरौद्रीरक्ता-श्वेतासितेतरा ॥ प्रातर्बालाच मध्याह्ने यौवनस्थाभवेपुनः । वृद्धा सायं भगवती-चिन्त्यतेमुनिभिःसदा ॥ हंसस्थागरुडारूढा तथावृषभवाहिनी । ऋग्वेदाध्या-यिनीभूमौ दृश्यते यातपस्विभिः ॥ यजुर्वेदं पठन्तीच अन्तरिक्षे विराजते । सासामगाऽपि सर्वेषु भ्राम्यमाणा तथाभुवि रुद्रलोकं गता त्वंहिविष्णुलोक-न्निवासिनी । त्वमेवब्रह्मणोलोकेऽमर्त्यानुग्रहकारिणी ॥ सप्तर्षिप्रीतिजननीमाया बहुवरप्रदा । शिवयोः करनेत्रोत्था ह्यश्रुस्वेदसमुद्भवा ॥ गरिष्ठाचवरार्हाच-वरारोहा च सप्तमी । नीलगङ्गातथा सन्ध्या सर्वदा भोगमोक्षदा

भागीरथी मर्त्यलोके पाताले भोगवत्यपि ।
त्रिलोकवाहिनी देवी स्थानत्रयनिवासिनी ॥११॥
भूर्लोकस्था त्वमेवाऽसि धरित्री लोकधारिणी ।
भुवो लोके वायुशक्तिः स्वर्लोके तेजसां निधिः ॥१२॥

महर्लोके महासिद्धिर्जनलोके जनेत्यपि । तपस्विनी तपोलोके सत्यलोकेतु सत्यवाक् ॥ कमलाविष्णुलोके च गायत्री ब्रह्मलोकदा । रुद्रलोकेस्थितागौरी-हरार्धाङ्गनिवासिनी ॥ अहमो महतश्चैव प्रकृतिस्त्वं हि गीयसे । साम्यावस्था-त्मिकात्वंहिशबलब्रह्मरूपिणी ॥

ततः परा पराशक्तिः परमा त्वं हि गीयसे ।
इच्छाशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिस्त्रिशक्तिदा ॥१६॥

गङ्गाच यमुनाचैव विपाशा च सरस्वती। सरयूर्देविका सिन्धुर्नर्मदरावती तथा ॥ गोदावरी शतद्रूश्च कावेरीदेवलोकगा। कौशिकीचन्द्रभागाच-वितस्ता च सरस्वती ॥ गण्डकी तापिनी तोया गोमती वेत्रवत्यपि। इडाच पिङ्गलाचैवसुषुम्नाचतृतीयका ॥ गान्धारीहस्तिजिह्वा च पूषापूषातथैव च । अलम्बुसा कुहूश्चैव शङ्खिनीप्राणवाहिनी

नाडी च त्वं शररस्था गीयसे प्राक्तनैर्बुधैः ।
हृत्पद्मस्था प्राणशक्तिः कण्ठस्था स्वप्ननायिका ॥२१॥
तालुस्था त्वं सदाधारा बिन्दुस्था बिन्दुमालिनी ।
मूले तु कुण्डलीशक्तिर्व्यापिनी केशमूलगा ॥२२॥

शिखामध्यासनात्वंहिशिखाग्रे तुमनोन्मनी। किमन्यद्बहुनोक्तेनयत्किञ्चिज्जगतीत्रये॥ तत्सर्वंत्वंमहादेविश्रियेसन्ध्येनमोऽस्तुते। इतीदंकीर्तितंस्तोत्रंसन्ध्यायांबहुपुण्यदम् । महापापप्रशमनं महासिद्धिविधायकम्। यइदं कीर्तयेत्स्तोत्रं सन्ध्याकालेसमाहितः ॥ अपुत्रः प्राप्नुयात्पुत्रंधनार्थी धनमाप्नुयात् । सर्वतीर्थ-तपोदानयज्ञयोगफलं लभेत् ॥

भोगान्भुक्त्वा चिरं कालमन्ते मोक्षमवाप्नुयात् ।
तपस्विभिः कृतं स्तोत्रं स्नानकाले तु यः पठेत् ॥२७॥

यत्रकुत्रजलेमग्नःसन्ध्यामज्जनजंफलम् । लभते नात्रसन्देहःसन्देहः सत्यंसत्यं-चनारद ॥ शृणुयाद्योऽपितद्भक्त्यासतु पापात्प्रमुच्यते। पीयूषसदृशंवाक्यं-सन्ध्योक्तंनारदेरितम् ॥२६॥

इति श्रीदेवीभागवतोक्तं श्रीगायत्रीस्त्रोत्रं सम्पूर्णम् ॥

तथा अतिथि का सत्कार प्रतिदिन जीवन में उन्नति और सर्वविध सुख की प्राप्ति कराते हैं। ऊपर के षट्कर्मों में सन्ध्या का विशेष ध्यान रक्खा जाय क्योंकि इसमें गागर में सागर भरा है। सभी मानव मात्र तीन काल सूर्य भगवान के रथ आने पर प्रातः, उनकी किरणों का ऊर्ध्वमुखी होकर अधोमुखी होने के समय मध्याह्न में तथा भगवान के रथ के अस्ताचल होने पर इन्हें अभिवादन कर भगवत्सन्निधि करें। जो ॐकार जपने वाले हैं वे ॐकार की विधि से, जो यज्ञोपवीती हैं वे सविधि और अन्य सब अपनी मान्यता के रूप में अपने अपने इष्टदेव की उपासना अवश्य करें।

अपने जीवन का सबसे उत्तम लाभ शिव की प्राप्ति से हैं। वह है चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष। भगवान की प्राप्ति षड्विकार पर विजय होने से ही सम्भव है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य ये शरीर में छः प्रबल रिपु हैं इनके कभी वशीभूत न होवे (अज्ञान में न फंसे)। ज्ञान के द्वारा इन्हें वश में रखे इन्हें जीतने से भगवान शिव की प्राप्ति है। काम इच्छा का नाम है। इच्छा के वशीभूत हो मनुष्य सब कुछ गंवा सकता है। उसे वश में करने से स्वधर्म का पालन विना रुकावट चलेगा। क्रोध के वश में न होकर क्रोध के आवेग को रोकता जाय उसमें जल भुनकर अपना ही नाश होता है "क्रोध चाण्डाल है"। लोभ में फंसकर मनुष्य अपना नाश न कर ले। मर्यादित जीवन में केवल भविष्य चिन्तन का और जन्म सफल करने का लोभ ही परमार्थ का लाभ देता है संसारी लोभ पतन कारक है। मोह से ही अर्जुन कर्तव्यच्युत होते देखे गये। अतः कभी मोह के वश न होवे। ईश्वरीयविभूति के मार्ग में मद सबसे अधिक शक्तिशाली बाधक तत्व है इससे अहं बुद्धि आकर पतन के गर्त में गिरना होता है। यदि इस पर अपना अधिकार हो जाता है तो दैवी सम्पत् का सोपान मिल गया। मात्सर्य—मत्सरता कभी परद्रोह का मन में भो विचार न करें। इनमें भी काम, क्रोध, लोभ नरक के द्वार हैं इनसे यथाशक्ति बचे यह सब नीचे के सूत्र में संक्षेप से प्रतिपादित है।